इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष ७ अंक १ चैत्र मास कलियुगाब्द ५११६ अप्रैल २०१४

मार्गदर्शक :
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादक मण्डल :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ० ओम प्रकाश शर्मा

टंकण एवं सज्जा :
अश्वनी कालिया

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१ (हि०प्र०)
दूरभाष : ०१९७२—२०३०४४

मूल्यः
प्रति अंक — १५.०० रुपये
वार्षिक — ६०.०० रुपय
itihasdivakar@yahoo.com
chetramneri@gmail.com

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

वर्ष प्रतिपदा

सार्वभौम वैज्ञानिक कालगणना	नरेन्द्र सहगल	३
अभिनन्दन नव सम्वत्सर	रवीन्द्र जुगरान	८

संवीक्षण

भारतीय राष्ट्रीय चिन्तन के मूल तत्त्व	डॉ० सतीश चन्द्र मित्तल	११

कृषि दर्शन

कुलुई की कृषि व्यावसायिक शब्दावली	मौलू राम ठाकुर	३१

सृष्टि आख्यान

राजस्थान की ब्रह्माण्ड लावणी में सृष्टि रचना	डॉ० उमा शंकर जोशी	४०

स्मृति शेष

अकस्मात् छोड़ गए विनोद लखनपाल	चेतराम गर्ग	४४

ध्येय पथ

भारतीय चिन्तन के आयाम पर संगोष्ठी	रवि ठाकुर	४७

सम्पादकीय

कृषि ही जीवन का निर्वाह

नव संवत्सर कलियुगाब्द ५११६, विक्रमी संवत् २०७१ तथा शक संवत् १९३६— सब प्रकार से सुख-समृद्धि पूर्ण हो!

कृषि का महत्त्व सर्वकाल और सर्वदेशव्यापी है। भारतवर्ष तो कृषि प्रधान देश के रूप में प्राचीन काल से ख्यातिप्राप्त है और ऋषि चिन्तन और कृषि कर्म ही भारत की सांस्कृतिक धारा का मौलिक प्रवाह है। मानव समाज एवं भारत राष्ट्र की अनुपम धरोहर एवं विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में कृषि के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि कृषि करो और सम्मानपूर्वक सम्पन्न बनों— **कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः।**

कृषि पराशर कृषि विज्ञान के क्षेत्र में महर्षि पराशर रचित एक विशिष्ट कृति है। महर्षि पराशर कहते हैं कि कृषि मनुष्य को सम्पत्ति और प्रखर बुद्धि प्रदान करती है और प्राणी जगत् के जीवन का निर्वाह कृषि पर ही आधारित है— **कृषिर्धन्या कृषिर्मेध्या जन्तूनां जीवनं कृषिः।**

जीवन के लिए कृषि की उपेक्षा कदापि नहीं की जा सकती है। इस सम्बन्ध में कृषि पराशर में कहा गया है कि कण्ठ, कान एवं हाथ में यदि सोने के आभूषण पहने हों तो, तब भी अन्न के अभाव में मनुष्य को उपवास ही करना पड़ता है—

कण्ठे कर्णे च हस्ते च सुवर्णं विद्यते यदि।
उपवासस्तथापि स्यादन्नाभावेन देहिनः।।

कृषि एक विज्ञान है जिसकी भिन्न-भिन्न आंचलों की विविध विशेषताएं हैं। इनके अध्ययन से समाज जीवन के इतिहास, संस्कृति एवं सामाजिक चिन्तन और व्यवहार के अनेक पहलू प्रकाश में आते हैं। इसीलिए हिमाचल प्रदेश के अनुभवसिद्ध प्रख्यात विद्वान श्रीयुत् मौलू राम ठाकुर जी का लेख, 'कुलुई की कृषि व्यावसायिक शब्दावली' इस अंक में सम्मिलित कर रहे हैं। इतिहास दिवाकर में कृषि दर्शन के अन्तर्गत भविष्य में भी लेखकों से ऐसी सामग्री की विनम्र अपेक्षा रहेगी।

विनीत,

डॉ. विद्या चन्द ठाकुर

सार्वभौम वैज्ञानिक कालगणना

नरेन्द्र सहगल

सर्वस्पर्शी एवं सर्वग्राह्य भारतीय संस्कृति के द्रष्टा मनीषियों और प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्रियों के अनुसार पृथ्वी पर पहले मानव की उत्पति चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन हुई। इसलिए न केवल भारतवासियों, बल्कि सारी मानवता के लिए यह दिन महत्त्वपूर्ण एवं पूजनीय है। यह दिन सारे ब्रह्माण्ड के लिए नववर्ष के शुभागमन का शंखनाद है।

सारे विश्व में प्रचलित लगभग सत्तर कालगणनाओं में से भारतीय कालगणना ही एकमात्र ऐसी वैज्ञानिक कालगणना है जिसका सम्बन्ध सारी मानवता को व्याप्त करने में सिद्ध कालतत्त्व से है। शेष सभी कालगणनाएं क्षेत्र और वर्ग विशेष पर आधारित है। पाश्चात्य जगत के विद्वान अभी तक यही कहते रहे कि मानव सृष्टि की आयु मात्र सात-आठ हजार वर्ष ही है, परन्तु अब नए अनुसंधान सामने आने के बाद पश्चिम के विद्वानों ने भी प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्रियों के इस कथन का समर्थन कर दिया है कि मानवीय सृष्टि दो अरब वर्ष पुरानी है।

प्रकृति आधारित कालगणना

भारतीय जीवनदर्शन के अनुसार पूर्णत: जलमग्न पृथ्वी में से सर्वप्रथम बाहर निकले भूभाग सुमेरू पर्वत पर सृष्टि निर्माता ब्रह्मा के रूप में प्रथम मानव का प्रादुर्भाव १ अरब, ९७ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार, १५ वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को रविवार के दिन प्रात: हुआ।

भारतीय कालगणना प्रकृति के नियमों पर आधारित है। नक्षत्रों पर आधारित विज्ञानसम्मत चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन नामक १२ मास एक वर्ष में आते हैं। इसी प्रकार सप्ताह के सात दिनों रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार, शुक्रवार तथा शनिवार का ग्रह-आधारित नामकरण भी स्वयं ब्रह्मा जी द्वारा विज्ञान के आधार पर किया गया है।

अत्यन्त प्राचीनकाल से भारत के जनमानस के साथ जुड़ी चली आ रही कालगणना वैज्ञानिक और अत्यन्त व्यावहारिक सिद्ध हुई है। यही कारण है कि ईसवी सन् के अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक महत्त्व एवं भारत के प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ रहे पश्चिम प्रभाव के होते हुए भी हमारे राष्ट्रीय जीवनमूल्यों, धार्मिक अनुष्ठानों, सामाजिक गतिविधियों और पारिवारिक क्रियाकलापों की सारी व्यवस्थाएं एवं पद्धतियां भारत की प्राचीन संवत् परम्परा से ही संचालित हो रही है। यही एक तथ्य हमारी भारतीय कालगणना के वैज्ञानिक और शास्त्रसम्मत आधार का सशक्त प्रमाण है।

पंथनिरपेक्ष विक्रमी सम्वत्

भारतीय कालगणना के अनुसार सृष्टि का प्रारंभ वर्ष प्रतिपदा के दिन ही हुआ। अत: भारत में प्रचलित विक्रमी सम्वत् का प्रारंभ भी नववर्ष प्रतिपदा से ही होता है। विक्रमी सम्वत् का वैचारिक आधार हमारे देश में मान्य वर्तमान पंथनिरपेक्ष स्वरूप को भी पुष्ट करता है। विक्रमी संवत्सर का प्रारंभ किसी सम्प्रदाय विशेष अथवा किसी धार्मिक देवी-देवता के नाम पर न होकर हमारे राष्ट्र की विजयी परम्परा की स्मृति के रूप में हुआ है।

ईसवी सन् का संबंध ईसाई जगत और ईसा से है। हिजरी सम्वत् का संबंध मुस्लिम जगत और हजरत मुहम्मद से है। परन्तु विक्रमी सम्वत् का संबंध सम्पूर्ण विश्व की प्रकृति, खगोल सिद्धान्त और ब्रह्माण्ड के नक्षत्रों के साथ है। इसलिए भारतीय कालगणना हमारे देश में प्रचलित पंथनिरपेक्षता के सिद्धान्तों और संवैधानिक परंपराओं और मूल्यों का भी आधार है।

इसी तरह वर्ष प्रतिपदा का दिन किसी देवी देवता के जन्मदिन का परिचायक न होकर सृष्टि की रचना एवं भारत राष्ट्र की गौरवशाली विजयी परम्पराओं और अभियानों का द्योतक है। ब्रह्म पुराण के अनुसार ***'चैत्रमासि जगद् ससर्ज प्रथमेऽहनि, शुक्लपक्षे समग्रं तु तदा सूर्योदये सति।'*** अर्थात चैत्र मास के प्रथम दिन ब्रह्मा के सूर्योदय के समय सृष्टि की रचना की। इसी कारण भारतीय नववर्ष का प्रारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को ही माना जाता है। भारत के समस्त गणित और खगोलशास्त्रों के अनुसार इसी दिन ग्रहों, वारों, मासों और संवत्सरों की वैज्ञानिक रचना की गई है।

ईसवी सन् की विदेशी अवधारणा

ईसवी सन् का प्रचलन रोम के सम्राट जुलियस सीजर के द्वारा ईसा के जन्म के तीन वर्ष पश्चात् किया गया। इस कालगणना को भी बाद में पोप ग्रेगरी ने संशोधित किया और इसे 'ग्रेगरियन कैलेंडर' की संज्ञा दे दी। इस कैलेंडर का आधार भी वास्तव में ईसवी पूर्व ७५३ में प्रारंभ हुआ रोमन सम्वत् ही है। भारत में इस ईस्वी सम्वत् का प्रचलन ब्रिटिश शासकों ने १७५२ में किया था।

भारत के प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेता शिवकोश मिश्र के अनुसार विश्व में सर्वाधिक ईसाई राष्ट्र हैं। सभी ने इस ईसवी सन् को अपनाया है। बाद में अंग्रेजों के विश्वव्यापी प्रभुत्व ने इसे संसार में फैला दिया। पहले ईसवी सन् भी २५ मार्च से प्रारंभ होता था, परन्तु अठारहवीं सदी से इसकी शुरूआत एक जनवरी से होने लगी। अंग्रेजी वर्ष में महीनों के नामकरण के तीन आधार हैं। जनवरी से जून तक रोमन देवताओं के नाम पर (जोनेस, मार्स और मया)। जुलाई और अगस्त के नाम पर (जुलियस और आगस्टन)। सितम्बर से दिसम्बर तक रोमन सम्वत् के मासों के आधार पर। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अंग्रेजी वर्ष में कोई वैज्ञानिक यथार्थता नहीं है।

हिजरी सम्वत्

भारत में मुगलों के शासनकाल में हिजरी सम्वत् अर्थात् चांद सम्वत् का वर्चस्व बना रहा। इस कालगणना का प्रारंभ अरबस्तान में उस समय हुआ जब १५ जुलाई ६२२ को इस्लाम के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद मक्का छोड़कर मदीना में चले गए। इस अभियान के समय सूचक के रूप में हिजरी सन् की कालगणना प्रारंभ हो गई। परंतु वैज्ञानिक और ज्योतिषशास्त्रों की दृष्टि में इस

कालगणना को महत्त्व नहीं मिल सका।

राष्ट्र की विजय का प्रतीक पर्व

आज से २०७१ वर्ष पूर्व इसी वर्ष प्रतिपदा के अवसर पर राष्ट्र नायक उज्जयनी नरेश सम्राट विक्रमादित्य ने विदेशी हमलावर शकों को भारत की धरती से खदेड़कर राष्ट्र की अभूतपूर्व विजय के कीर्ति स्तंभ के रूप में जिस कालगणना का प्रारंभ किया था उसी को कृतज्ञ भारत राष्ट्र ने विक्रमी सम्वत् कहकर पुकारा।

उस समय से पूर्व शकों ने सिन्धु नदी को पार करके समस्त उत्तर भारत को रोंद डाला। शक सेना अवन्ति (मध्य प्रदेश) तक जा पहुंची। युवराज विक्रमादित्य ने राष्ट्र की बिखरी शक्तियों को संगठित करके शकों की शक्ति का उन्मूलन किया और सारे देश को एक ही भगवाध्वज के नीचे एकत्रित करने में सफलता प्राप्त की। शक आक्रांताओं के प्रबल प्रतिकार के लिए भारत की सभी बिखरी शक्तियां एकजुट हो गईं। शकों को न केवल पराजित ही किया गया, अपितु उन्हें भारतीय संस्कृति में आत्मसात भी कर लिया गया। उल्लेखनीय है कि आज भारत के उत्तरी क्षेत्रों में रहने वाले सक्सेना जाति के लोग 'शक सेना' के ही वंशज हैं और हिन्दू समाज के अभिन्न अंग हैं।

सम्राट विक्रमादित्य ने शकों के मूल स्थान हरिवर्ष (अरब) में जाकर भी विजयश्री का वरण किया तथा और भी आगे बढ़कर यवन, हूण, तुषार जातियों को पराजित कर भारत के विजयध्वज को फहराया। भारत की इसी गौरवशाली ऐतिहासिक सफलता की स्मृति में प्रारंभ हुआ यह सम्वत् सम्राट पृथ्वीराज चौहान के काल तक राजकीय सम्मान के साथ चलता रहा। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक पूरे भारत में इसी सम्वत् के अनुसार प्रशासकीय, सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों का संचालन होता रहा। राजकाज एवं प्रशासन को छोड़कर शेष सभी क्षेत्रों में यह प्रथा आज भी चलती है। भारत की अधिकांश धार्मिक संस्थाएं एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे राष्ट्रवादी संगठन तो योजनाबद्ध तरीके से अभियान लेकर इस सम्वत् को स्वदेशी संस्कृति के आधार स्तंभ के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

भारत की आस्था पर आधारित

मुगलों एवं अंग्रेजों के शासनकाल में भारत की उज्जवल संस्कृति, सार्वभौम एवं वैज्ञानिक उपलब्धियां और इसके आध्यात्मिक मूल्यों को समाप्त करने के महाजघन्य षड्यंत्र रचे गए। यद्यपि इन विदेशी षड्यंत्रों के कारण हम अपनी शिखर उपलब्धियों और सर्वोच्च साधनों से कट गए, परन्तु इनकी शाश्वतता और इनकी वैज्ञानिक उपयोगिता आज भी भारतीय जनमानस को अपने साथ किसी न किसी रूप में जोड़े हुए है।

यह दबे हुए परन्तु किसी न किसी रूप में सर्वथा सुरक्षित भारत के सांस्कृतिक स्फुलिंग यदा-कदा अपने आप ऊपर जमी राख को हटाकर दहक उठते हैं। परन्तु राष्ट्र के स्वाभिमान के साथ जुड़ा हुआ स्वदेशी सम्वत् का यह विषय भी उसी घोर राजनीतिक संकीर्णता का शिकार हो गया जिसके शिकंजे में राष्ट्र की प्राणतत्व संस्कृत भाषा, स्वदेशी शिक्षा, भारतीय इतिहास का पुनर्लेखन,

विदेशी आक्रांताओं द्वारा तबाह कर दिए गए धार्मिक स्थलों का जीर्णोद्धार, मंतातरण से विधर्मी अथवा अराष्ट्रीय हो गए लोगों का भारतीयकरण और राष्ट्रगान वंदेमातरम् जैसे विषय फंसे हुए हैं।

बाधा बनी वोट राजनीति

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कुछ राष्ट्रवादी शक्तियों के प्रयासस्वरूप भारत की सरकार ने देश की राष्ट्रीय कालगणना की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु १९५२ में एक संवत्सर समिति का गठन किया। इस समिति ने १९५५ में अपने फैसले में विक्रमी सम्वत् को स्वीकार करने की सिफारिश भी की थी। परन्तु वोट बैंक राजनीति बाधा बन गई। विक्रमी सम्वत् को भी एक विशेष समुदाय के विरोधस्वरूप किनारे कर दिया गया। सरकार ने इस तथ्य और सच्चाई को आंखों से ओझल कर दिया कि विक्रमी सम्वत् का संबंध राष्ट्र की विजयी परम्परा से है, न कि किसी जाति विशेष से। यह कालगणना भारत की राष्ट्रीय कालगणना है, इसे इसके वास्तविक संदर्भ और अर्थ में समझकर ही हम इसे भारत के प्रत्येक जन की आस्था में उतार सकते हैं। इससे साम्प्रदायिक विद्वेष नहीं, अपितु राष्ट्रीय एकात्मता को बल मिलेगा।

राष्ट्रोत्थान के अनेक शुभकार्य

अत्यंत प्राचीनकाल से लेकर आज तक भारत भूमि पर राष्ट्रोत्थान के जितने भी महान कार्य हुए उनका प्रारंभ इसी दिन हुआ। इसलिए यह दिन अर्थात वर्ष प्रतिपदा भारत का राष्ट्रीय पर्व है। विदेशी एवं राक्षसी शक्तियों को पराजित करने वाले भारत राष्ट्र के नायक मर्यादा पुरुषोतम श्रीराम का राज्याभिषेक वर्ष प्रतिपदा के दिन ही हुआ था। अधर्म पर धर्म का वर्चस्व स्थापित करने वाले सम्राट युधिष्ठिर का राज्याभिषेक भी इसी दिन हुआ था। शकारि विक्रमादित्य के विजयोत्सव के उपलक्ष्य में इसी वर्ष प्रतिपदा पर विक्रमी सम्वत् का शुभारंभ हुआ था इसी तरह सम्राट शालिवाहन के शक सम्वत् का भी इसी दिन प्रादुर्भाव हुआ था। आर्य संस्कृति की पुनर्प्रतिष्ठापना, विधर्मी बन चुके लोगों की घर वापसी, वैदिक शिक्षा का प्रचलन, गोरक्षा, संस्कृत भाषा के उत्थान जैसे अनेक राष्ट्रीय अभियानों का झंडा उठाने वाले महर्षि दयानंद ने इसी दिन आर्य समाज की स्थापना की थी।

राष्ट्र तपस्वी डा. हेडगेवार का जन्मदिन

अपने राष्ट्र को परमवैभव पर ले जाकर भारतमाता को पुनः जगतगुरु के सिंहासन पर शोभायमान करने के उद्देश्य से कार्यरत राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक युगप्रवर्तक डा. केशवराम बलिराम हेडगेवार का जन्म वर्ष प्रतिपदा के शुभ दिन ही हुआ था। समर्थ हिन्दू-समर्थ भारत अर्थात देश के बिखरे हुए राष्ट्रीय समाज के संगठित, शक्ति सम्पन्न, चरित्रवान और स्वेदशगामी बनने से ही भारत का सर्वांगीण विकास होगा, इस मूल मंत्र के उद्गाता डा. हेडगेवार द्वारा स्थापित संघ की हजारों शाखाएं देश के कोने-कोने में लगती हैं। लाखों स्वयंसेवक राष्ट्र साधना के कार्य में जुटे हैं। संघ द्वारा निर्धारित छः राष्ट्रीय उत्सवों में से एक है वर्ष प्रतिवदा।

विदेशी ईसाई वर्ष पर प्रसन्नता करने वाले लोगों को स्वदेशी संदेश देने के उद्देश्य से संघ के स्वयंसेवकों ने वर्ष प्रतिपदा के दिन स्वदेशी बधाई पत्र अपने मित्रों और रिश्तेदारों को भेजने की

प्रथा चलाई है। इन पत्रों पर भारतीय सम्वत् परम्परा के महत्त्व और विजयी इतिहास की जानकारी छपी होती है। धीरे-धीरे यह प्रथा भारतीय समाजजीवन के प्रत्येक वर्ग और क्षेत्र में पहुंच रही है।

अब छोड़ दें परकीय कालगणना

अत: राष्ट्रीय स्वाभिमान को जागृत करते हुए अपनी सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखने के इस राष्ट्रव्यापी अभियान में सभी देशवासी सहयोगी बनें, यह समय की आवश्यकता है। हम पाश्चात्य संस्कृति का त्याग करें और अपने प्राचीन वैभव के साथ पुन: जुड़ने का साहस दिखाएं। जिस कालगणना पर हम रात-रातभर होटलों में नाचते हैं, पबों में थिरकते हैं और कई प्रकार के तामसिक रसास्वादनों में बहकर होशो-हवास खो बैठते हैं, वह यूरोपीय ईसाई साम्राज्य के प्रभावकाल में हमारे ऊपर जबरन थोपी गई थी। वह कालगणना परतंत्रता की प्रतीक है।

जब हमारे पास राष्ट्र की दृष्टि से विजयी, विज्ञान की दृष्टि से समयोचित, प्रकृति की दृष्टि से समन्वयकारी, खगोलशास्त्र की दृष्टि से पूर्ण और धार्मिक दृष्टि से पंथनिरपेक्ष और स्वदेशी कालगणना है तो फिर हम विदेशी, अधूरी और साम्प्रदायिक कालगणना की ओर अंधाधुंध क्यों भागें? अपनी श्रेष्ठ परंपराओं का अनुसरण करते हुए फिर से एक बार उठें और समूचे विश्व में भारतीय गौरव को प्रतिष्ठित करें।

५ सी/२२, रोहतक रोड़,
करोल बाग, नई दिल्ली – ११०००५

अभिनन्दन नव सम्वत्सर

रवीन्द्र जुगरान

जीवन में आनन्द, उत्साह, उमंग के लिए उत्सवों की योजना की गई। शास्त्रों की मान्यता के अनुसार चैत्र माह की शुक्ल प्रतिपदा सृष्टि का प्रथम दिवस है। अपनी प्राचीन परम्परा के अनुसार भगवा पताका फहराकर नववर्ष का स्वागत करें। ध्वज प्रत्येक राष्ट्र, धर्म एवं सम्प्रदाय का पहचान होता है। हिन्दू धर्म में ध्वज का पौराणिक एवं वैदिक महत्त्व है। भारतीय संस्कृतिक राष्ट्र का सबसे प्रभावी ध्वज भगवा है जो कि आज भी भारत के सांस्कृतिक वैभव को दर्शाता हुआ प्रत्येक शुभ कार्य में गौरव के साथ लहराता है।

भगवा ध्वज भारत का सांस्कृतिक, ऐतिहासिकता एवं धार्मिकता को दर्शाने वाला एवं त्याग, पवित्रता और ज्ञान का प्रतीक है। भगवा रंग त्याग सुख-समृद्धि एवं विजय का प्रतीक है।

शुभ मांगलिक कार्यों में ध्वज का विशेष पूजन कर ध्वजारोहण किया जाता है। इसमें विघ्नों को हटाने एवं समस्त अमंगलों को दूर करने की शक्ति निहित है। भारत के सभी मन्दिरों के शिखरों पर भगवा पताका फहराई जाती है। मन्दिर की पूर्णता ध्वज के आधार पर है। सभी मठों-आश्रमों में अपने-अपने सम्प्रदायों के अनुसार ध्वाजारोहण किया जाता है।

ध्वज शौर्य का एवं विजय का प्रतीक है। श्रीराम, श्रीकृष्ण, वीर शिवाजी के युद्ध रथों पर भी भगवा ध्वज लहराता था, जिसके कारण विजय का भाव सदैव जागृत रहता है।

वैदिक काल से भगवा रंग सर्वमान्य रहा है। ध्वज दो त्रिकोण वाला-पहला त्रिकोण छोटा और नीचे वाला त्रिकोण बड़ा होता है। धार्मिक कार्यक्रमों में एक त्रिकोण वाले ध्वज लगाए जाते हैं।

ध्वज पर अंकित ॐकार का चिह्न पूर्ण ब्रह्म का प्रतीक है। 卐स्वास्तिक वाली ध्वजा सुदर्शन चक्र का प्रतीक है। यह धनात्मक चिह्न को भी इंगित करता है जो कि सम्पन्नता का प्रतीक है। स्वास्तिक के चारों ओर लगाए गए बिन्दु चार दिशाओं के प्रतीक है। ध्वज पर ॐ, स्वास्तिक, सूर्य आदि के अतिरिक्त अपने-अपने देवता-सम्प्रदाय का चिह्न भी होता है।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा भारतीय नववर्ष एवं नवरात्र पर्व का प्रारम्भ दिवस भी है। यह प्राचीन परम्परा रही है कि इस दिन घरों में भगवा पताका फहराते थे और अपने घरों को तोरण द्वार से सजाते थे। इसलिए प्रत्येक हिन्दू को नववर्ष के प्रथम दिन अपने घरों के ऊपर भगवा पताका लगानी चाहिए जो कि नववर्ष के मंगल का प्रतीक है।

नवरात्र में जवारे (हरियाली) का महत्त्व

चैत्र मास में नववर्ष के साथ-साथ देवी के नवरात्र शक्ति पूजन का भी विधान है। माँ दुर्गा के नवरात्र पर्व प्रथम दिन की पूजा के साथ ही घर के पूजा स्थल पर शुद्ध जल से माटी को सींचकर

मंत्रों के द्वारा सप्तधान्य बोया जाता है जो खेत्री, हरियाली का रूप धारण करती है। नवरात्र के प्रत्येक दिन देवी पूजन के साथ-साथ खेत्री की हरियाली भी बढ़ती जाती है। यह सुख-समृद्धि एवं आनन्द प्रदायिनी होती है।

नौ दिनों तक माँ का पूजन एवं आरती करनी चाहिए। पूजन के समय प्रतिदिन प्रातःकाल खेत्री की माटी पर जल अर्पण करना चाहिए। इससे खेत्री शीघ्र बढ़ेगी। खेत्री का पूजन माँ का स्वरूप मानकर की जाती है। वास्तव में खेत्री के रूप में माँ भगवती ही हमारे घर में विराजमान होती है। नवरात्र के अन्तिम दिन हरियाली को प्रसाद के रूप में बांटा जाता है और माँ भगवती से प्रसन्नता व समृद्धि की कामना की जाती है।

सप्त धान्य के विषय में कहा गया है–

यवधान्यतिलाः कंगुः मुदगचणकश्यामकाः।
एतानि सप्तधान्यानि सर्वकार्येषु योजयेत्।।

जौ, धान, तिल, कंगनी, मूंग, चना और सांवा-सप्त धन्य है। सप्त धान्य में जौं की फसल नौ दिनों में शीघ्रता से बढ़ती है। इसलिए जौ का प्रयोग खेत्री बीजन में किया जाता है।

दुर्गा अष्टमी या नवमी के दिन कन्या पूजन के बाद नवरात्र विसर्जन के साथ-साथ खेत्री का विसर्जन भी पवित्र ढंग से होना चाहिए। नदी, तालाब पर ही पूरी श्रद्धा के साथ विसर्जन करना चाहिए।

नवरात्र के अन्तिम दिन पूजन करके उसकी हरियाली को प्रसाद रूप में घर की चौखट के ऊपर दाएं-बाएं लगाना चाहिए। परिवार के सभी सदस्यों को उसे कानों में या सिर के ऊपर धारण करना चाहिए। खेत्री पूजन से दुःख दरिद्रता का नाश होता है। घर में अन्नपूर्णा निवास करती है और धन-धान्य की वृद्धि होती है।

नवरात्र पर कन्या पूजन : भारतीय चैत्र एवं आश्विन मास के शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक नवरात्र के रूप में दुर्गापूजन का विधान है। चैत्र माह के नवरात्र को वासन्तिक नवरात्र तथा आश्विन नवरात्र को शारदीय नवरात्र कहते हैं।

भारतीय संस्कृति में नारी को देवी के रूप में सम्मान प्राप्त है– ***स्त्रियः समस्तास्तव देवि भेदाः*** के आधार पर समस्त नारी महामाया की प्रतिकृति है। नवरात्र के शक्ति पर्व पर सम्पूर्ण देश में कन्या पूजन का विधान है। नवरात्रों में कुँआरी कन्याओं का पूजन विशेष महत्त्व रखता है।

शास्त्रों के आधार पर २ वर्ष से १० वर्ष तक की आयु की कन्याओं का पूजन होता है। १० वर्ष से अधिक आयु की बालिकायें कन्या पूजन में वर्जित है। छोटी आयु की कन्या स्त्री-पुरुष भेद न जानने के कारण निर्विकार एवं पवित्र होने के कारण से कन्याएं दुर्गा रूप में पूजने योग्य हैं।

देवी रूप में कन्या : उपरोक्त आयु वर्ग की नौ कन्याओं को देवी की विभिन्न शक्तियों के रूप में पूजा जाता है। अपनी लीला से रचना करने वाली २ वर्ष की कन्या कुमारी देवी के रूप में पूजी जाती है जो कि ऐश्वर्य देकर दरिद्रता का नाश करती है। तीन गुणों से युक्त ३ वर्ष की कन्या– त्रिमूर्ति देवी के रूप में, भोग और मोक्ष को सिद्ध करने वाली है। भक्तों के कल्याण से युक्त ४ वर्ष

की कन्या कल्याणी देवी के रूप में पूजी जाती है जो राज्यपद की पूर्ति करवाती है। सृष्टि में बीज का रोपण करने वाली ५ वर्ष की कन्या रोहणी देवी का रूप है जो रोग नाश कर स्वास्थ्य देती है। जगत को विलीन करने वाली छः वर्ष की कन्या कालिका माँ के नाम से जानी जाती है जो कि शत्रु का नाश और विरोधियों को परास्त करती है। पाप का नाश करने वाली सात वर्ष की कन्या चण्डिका देवी का स्वरूप है जो धन सम्पत्ति देने वाली है। सबको सुखी बनाने वाली आठ वर्ष की कन्या शाम्भवी देवी कहलाती है जो कि निर्धनता दूर कर वाद विवाद में विजय दिलवाती है। संकट से बचाने वाली नौ वर्ष की कन्या दुर्गा स्वरूप है जो दुर्गम संसार से तार कर कष्टों से बचाती है। अशुभ का नाश करने वाली दस वर्ष की कन्या सुभद्रा देवी साधक का कल्याण कर लोक-परलोक में सुख देती है।

नवरात्र में प्रत्येक दिन देवी पूजन एवं पाठ के बाद कन्या पूजन का विधान है। अन्यथा अष्टमी या नवमी के दिन नौ कन्याओं का पूजन विधि-विधान से करना चाहिए। कन्या को देवी के रूप में विराजित कर उनके पाद प्रक्षालन कर, तिलक लगाकर, मौली बाँध कर पूजन करना चाहिए। पूजन पश्चात् भोजन प्रसाद खिलाकर प्रणाम कर, दक्षिणा अवश्य देनी चाहिए।

नमस्कार मंत्र : नौ कन्याओं को दुर्गा रूप मानकर क्रमशः उन्हें— ॐकुमार्यै नमः, ॐत्रिमूर्त्यै नमः, ॐकल्याण्यै नमः, ॐ रोहिण्यै नमः, ॐ कलिकायै नमः, ॐ चण्डिकायै नमः, ॐ शाम्भव्यै नमः, ॐ दुर्गायै नमः और ॐ सुभद्रायै नमः। इन मंत्रों से नमस्कार करने से माँ भगवती प्रसन्न हो कर भक्तों को सांसारिक कष्टों से मुक्ति प्रदान करती है। देवी के विषय में कहा गया है कि—

सर्वभूता यदा देवी, स्वर्गमुक्ति प्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये, का वा भवन्तु परमोक्त्यः।।

समाज में नारी के प्रति सम्मान भाव को दर्शाने के लिए सामाजिक समरसता हेतु समाज में वंचित, निर्धन, अभावग्रस्त बस्तियों में, फुटपाथों में रहनेवाली, खेलनेवाली छोटी-छोटी कन्याओं का इन नौ दिनों में विधिवत पूजन करना चाहिए। धर्मपरायण एवं सामर्थ्यवान लोगों को इन बस्तियों में जाकर उन्हें सुन्दर वस्त्र देकर, माँ देवी का चित्र देकर, उनका पूजन, भोजन प्रसाद एवं भेंट देनी चाहिए। आखिर ये भी तो माँ देवी का रूप है। शास्त्र भी तो कहते हैं— ***'सर्वरूपमयी देवी सर्व देवीमयं जगत'*** वह देवी सभी रूपों में सर्वरूपमयी है तथा सम्पूर्ण जगत देवीमय है।

डब्लू जेड— १२३८/३,
नांगल राय, नई दिल्ली

संवीक्षण

भारतीय राष्ट्रीय चिन्तन के मूल तत्त्व

डॉ० सतीश चन्द्र मित्तल

राष्ट्र, राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद विश्व के इतिहास में जाने-पहचाने शब्द हैं। जहाँ भारतीय-चिन्तन में इसकी संकल्पना प्राचीनतम है, वहाँ पाश्चात्य जगत् में इसका चिन्तन १८वीं तथा १९ वीं शताब्दी की देन है। एक का आधार मूलत: सांस्कृतिक है, दूसरे का राजनीतिक है। स्वाभाविक है कि दोनों की अवधारणा तथा विकास का क्रम भिन्न रहा है।

भारत के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इसे जानने के लिए इसके अर्थ, प्रकृति, व्यापकता तथा इसके आवश्यक तत्त्वों को जानना आवश्यक होगा। इससे संबंधित अनेक प्रश्न हैं। राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद क्या है? क्या यह कोई प्राचीन अवधारणा अथवा आधुनिक विचार है? इसका विभिन्न देशों में, विभिन्न कालों में क्या स्वरूप रहा? क्या यह भावात्मक अभिव्यक्ति, वर्तमान वैश्विक चिन्तन में बाधा तो नहीं है?

सामान्य अर्थों में देश एक भौगोलिक इकाई, राज्य एक राजनीतिक रचना तथा राष्ट्र एक भावात्मक अभिव्यक्ति है। देश में इसकी भौगोलिक सीमाएँ होती है। राज्य में क्षेत्र, जनसंख्या, एक निश्चित सरकार तथा प्रभुसत्ता होती है। राष्ट्र मानव की उन भावनाओं का प्रतीक है जिससे वह अपने अतीत से जुड़ा रहता है, वर्तमान में वास करता है, भविष्य की आकांक्षा तथा कल्पना को संजोता है। वह किसी भी देश या राज्य में अपने राष्ट्र के अतीत, वर्तमान तथा भविष्य से जुड़ा है। अत: राष्ट्रवाद भावात्मक, रागात्मक तथा समर्पण भाव का एक अटूट संबंध है।

राष्ट्रवाद का अर्थ

राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रीयता-संबंधी विचार पर पाश्चात्य विचारकों तथा भारतीय-तत्त्ववेत्ताओं ने समय-समय पर इसके अर्थ तथा भाव को प्रकट किया है। आधुनिक भारत की राष्ट्रीयता-विषयक अवधारणाएँ मुख्यत: पाश्चात्य चिन्तन से प्रभावित हैं। *'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका'* में दिया है,[१] 'राष्ट्रीयता एक मनोदशा है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने राष्ट्र के प्रति उच्चतम भक्ति अनुभव करता है।' ब्रिटेन के प्रसिद्ध विद्वान होन्स कोहन (१८९१-१९७१) ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा,[२] राष्ट्रीयता एक विचार है, एक विचार-शक्ति है जो मनुष्य के मस्तिष्क तथा हृदय को नये विचारों और मनोभाव से भर देता है और उसकी चेतना को संगठित कर तथा कार्यों में परिवर्तन करने कि लिए प्रेरित करता है।' इसी भान्ति *इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ सोशल साइंसेज़*[३] में भी इसका विवेचन करते हुए बतलाया गया, 'एक विशिष्ट- अधिक व्यापक अर्थ में राष्ट्रीयता वह प्रकृति है जो जीवन मूल्यों के तारतम्य में राष्ट्रीय व्यक्तित्त्व को एक उच्च स्थान प्रदान करती है।'

भारत के प्राचीन साहित्य में राष्ट्रवाद का महती यशोगान किया गया है। इसे मातृभूमि के सम्मान तथा सुरक्षा के लिए सब कुछ अर्पित करने की, सदैव तत्पर भावना बतलाया गया है। इसे भूमि से सर्वोच्च तथा भावात्मक संबंध बताया गया है। वैदिक तथा उत्तरवर्ती साहित्य में इस पर बल दिया गया है। इसे राष्ट्र या देश की आत्मा बतलाया गया है। भारत का राष्ट्रीय जीवन सहस्रों राष्ट्रपुरुषों के कर्म, तप और यज्ञ के कारण सदा जीवमान और सदाप्रवाही रहा।

विष्णुमहापुराण[४] में देशप्रेम एवं भारत-भक्ति का वर्णन करते हुए लिखा है—

'गायन्ति देवा: किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूय: पुरुषा: सुरत्वात्।।'

अत: युगों-युगों से यही भावना बार-बार भारत के अनेक ऋषियों, मुनियों, चिन्तकों, लेखकों, सुधारकों, सन्तों तथा भक्तों ने व्यक्त की है। वस्तुत: राष्ट्रवाद का यह यशोगान, यह श्रद्धापूर्ण जिज्ञासा अनेक ग्रन्थों में व्यक्त की गई है। महाभारत[५] में युधिष्ठिर, भीष्म के पास जाकर अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हैं तथा राष्ट्र की रक्षा तथा वृद्धि के लिए क्या उपयोगी है, पूछते हैं। इसके उत्तर में भीष्म पितामह कहते हैं, ''युद्ध में प्राणों की बलि का अवसर आने पर जिस राष्ट्र का ऐसा निश्चय हो जाता है कि इसके संरक्षण या देश की रक्षा करके रहूँगा, उसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है।''

आधुनिक काल में भारत के श्रेष्ठ महापुरुषों ने राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता को बड़ा महत्त्व दिया है। स्वामी विवेकानन्द (१८६३-१९०२), लोकमान्य तिलक (१८५६-१९२०), महर्षि अरविन्द (१८७२-१९५०), बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (१८३०-१८९४)—सभी ने राष्ट्रीयता की भावना को सर्वोत्तम तथा उच्चतम बतलाया है। स्वामी विवेकानन्द[६] ने भारत की राष्ट्रीय आत्मा धर्म को बतलाया है। लोकमान्य तिलक[७] ने धर्म को ऊँचा स्थान दिया और राष्ट्र का ईश्वर के साथ एकात्म संबंध स्थापित किया। उनका कथन है कि ईश्वर तथा हमारा देश एक-दूसरे से भिन्न नहीं है। संक्षेप में हमारा देश ईश्वर का ही एक रूप है। महर्षि अरविन्द[८] ने सन् १९०९ में उत्तरपाड़ा (जिला : हुगली, प० बंगाल) में दिए अपने प्रसिद्ध भाषण में राष्ट्रीयता की व्याख्या करते हुए कहा है, ''राष्ट्रीयता, राजनीति नहीं, बल्कि एक धर्म है। एक विश्वास है, एक निष्ठा है, सनातन धर्म ही, मेरे लिये राष्ट्रीयता है।''

एक दूसरे स्थान पर उन्होंने कहा,[९] ''राष्ट्रवाद एक धर्म है जो भगवान् की देन है। राष्ट्रवाद एक सिद्धान्त है जिसे आधारित करता है .....राष्ट्रवाद की शक्ति भगवान् की शक्ति है..... राष्ट्रवाद अमर है, वह मर नहीं सकता। भगवान् मारे नहीं जा सकते। भगवान् को बन्दी नहीं बनाया जा सकता।''

श्री अरविन्द ने राष्ट्रीयता एवं मातृभूमि के प्रति सामञ्जस्य की भावना व्यक्त करते हुए *'भवानी मन्दिर'* में कहा[१०] राष्ट्र क्या है? हमारी मातृभूमि क्या है? यह कोई भूमि का टुकड़ा, भाषा का अंलकार या मन की कहानी नहीं है। जैसे महिषासुरमर्दिनी का प्रादुर्भाव करोड़ों देवताओं की

शक्ति के मिलने से हुआ था, उसी तरह भारतमाता एक शक्ति है जो करोड़ों देशवासियों से मिलकर बनी है, जिस शक्ति को हम भारतवर्ष या भवानी भारती कहते हैं, यह भारत के समस्त लोगों की जीवित जागृत शक्ति है।' अपनी पत्नी मृणालिनी को एक पत्र में [११] उन्होंने लिखा था, 'अन्य लोग स्वदेश को जड़ पदार्थ, कुछ खेत, वन, पर्वत, नदी भर मानते हैं, लेकिन मैं स्वदेश को माँ मानता हूँ, इसकी भक्ति और पूजा करता हूँ।'

अत: श्री अरविन्द ने राष्ट्रीयता को एक धर्म, भगवान् की शक्ति तथा भारतमाता के रूप में देखा। उन्होंने इसी भक्ति से राष्ट्रीयता को चित्रित किया।

श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने राष्ट्रवाद की व्याख्या सर्वोत्तम धर्म के रूप में की। उन्होंने अपने प्रसिद्ध उपन्यास *'आनन्द मठ'* में ***'वन्देमातरम्'*** को राष्ट्रीय मन्त्र के रूप में प्रस्तुत किया।

वर्तमान काल में भारत के महान् चिन्तक श्री माधवराव सदाशिवराव गोळवळकर (श्री गुरुजी : १९०६-१९७३)[१२] ने राष्ट्रीयता के आधार, राष्ट्र को एक सावयव प्रकृति तथा सांस्कृतिक आधार बतालाया है। उनके अनुसार राष्ट्र में एक भौगोलिक एकता, समान अनुभव, समान ऐतिहासिक विकास तथा समान जीवन-मूल्य महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं।

भारत के पूर्व प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई (१८९६-१९९५) [१३] के अनुसार राष्ट्र का हित ही राष्ट्रीयता है, जो बात राष्ट्र के खिलाफ है, वह राष्ट्रीयता नहीं है।

आधुनिक भारत के प्रसिद्ध इतिहासकारों, समाजशास्त्र के ज्ञाताओं ने राष्ट्रीयता पर गम्भीर चिन्तन तथा इसका विशद वर्णन किया है। डॉ० सत्यनारायण दूबे के विचार को निष्कर्ष रूप में देना अनुचित न होगा। उसके शब्दों में, 'राष्ट्र के हित में प्रधानता और प्राथमिकता ही राष्ट्रीयता है,[१४] राष्ट्रीयता एक विशिष्ट प्रकार का मनोभाव है, एक आध्यात्मिक भावना है, जिसका केन्द्र वह जनसमुदाय होता है जिसे राष्ट्र कहते हैं।[१५] राष्ट्रीयता की भावना में मातृभूमि, पितृभूमि, जन्मभूमि का महत्त्वपूर्ण स्थान है।' [१६]

डॉ० दूबे का पुन: कथन है कि 'राष्ट्रीयता कोई सुषुप्त भावना नहीं है। यह एक अत्यन्त गतिशील, सक्रिय और उत्तेजक भावना ही है और लोगों को राष्ट्र की समृद्धि के लिए संगठित रूप में प्रयत्न करने के लिए प्रेरित करती है।[१७] संक्षेप में, राष्ट्र सर्वोपरि है, इन अक्षरों में राष्ट्रीयता का सार निहित है।'[१८]

अत: संक्षेप में राष्ट्रीयता के बारे में यह कहना उचित होगा कि आधुनिक युग में मनुष्य जाति को इस मनोभाव ने जितना प्रभावित और अनुप्राणित किया है, उतना शायद ही किसी अन्य भाव अथवा आदर्श ने किया है।

यूरोप में राष्ट्रवाद का स्वरूप

यूरोपीय-जगत् में राष्ट्रवाद मुख्यत: एक राजनीतिक विचार है जो सामान्यत: राष्ट्र तथा राज्य में ज्यादा अन्तर नहीं मानता है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में यूरोप में राष्ट्रीय राज्यों की संकल्पना विभिन्न देशों में विभिन्न समयों तथा परिस्थितियों में हुई। ज्यादातर राज्यों का निर्माण युद्धों का

परिणाम रहा है।

'नेशन' लैटिन-शब्द 'नाट्यो' (ñatīō = natio) से व्युत्पन्न माना जाता है। सामान्यत: इसका अर्थ जन्म से जुड़ा है।[१९] अर्थात् इसका शाब्दिक अर्थ एक सामाजिक समूह से है जो रक्त-संबंध से जुड़े हैं। वस्तुत: राष्ट्रवाद, जन, देश के अर्थ तथा प्रयोग भी भिन्न-भिन्न रूप में हुए है। इसकी निश्चित व्याख्या नहीं की जा सकती। इसे नगर-राज्यों के बृहत्तर स्वरूप के रूप में जाना जाता है।

पाश्चात्य जगत् में समाज का निर्माण क्रमश: तीन ऐतिहासिक कालखण्डों में बाँटा गया है, ये हैं– पहला काल प्रारम्भ से ५०० ई० तक, दूसरा काल ५०० ई० से १५०० ई० तक तथा तीसरा काल १५००ई० से वर्तमान तक। इसे प्रीमिटिव-युग, मध्ययुग तथा आधुनिक युग भी कहा गया है। कुछ यूरोपीय विद्वानों के अनुसार, यूरोप में आधुनिक अर्थों में राष्ट्र का निर्माण उत्तर-मध्ययुग में हुआ। जबकि उनमें प्रीमिटिव-युग की भावनाएँ तथा प्रवृत्तियाँ, जो मानव स्वभाव में हैं, विद्यमान रही। आधुनिक काल में धीरे-धीरे राजनीतिक संगठन को विकसित करने की अवधारणाएँ बन गई थी।[२०]

पन्द्रहवीं तथा १६वीं शताब्दी के पुनर्जागरण तथा सुधार-आन्दोलनों ने इसे गति दी। यद्यपि ब्रिटिश-इतिहासकार प्रो० एफ्०एम् पोविक (१८७९-१९६३) ने इस भावना का निर्माण १२०४ ई०में नार्मण्डी की हानि से बताया, जिसमें यह कहा गया है कि नार्मण्डी के कुलीन या तो द्वीपों को छोड़ दें; यदि वे इंग्लैण्ड जाना चाहते हैं, या नार्मण्डी रहना चाहते हैं तो इंग्लैण्ड छोड़ दें।[२१] धीरे-धीरे अनेक तत्त्वों[२२] जैसे– समान भाषा, साहित्य, कानून, प्रतिनिधि-सरकार, युद्ध, विदेशी व्यापार आदि ने राष्ट्रीय भावनाओं को प्रोत्साहन दिया।

पाश्चात्य जगत् में इंग्लैण्ड अपने को आधुनिक राष्ट्रवाद का मूल प्रारम्भकर्ता मानता है।[२३] इसका विकास उत्तर-मध्ययुग में बताया गया है। इंग्लैण्ड की राष्ट्रीय भावनाओं के महाकवि विलियम शेक्सपीयर (१५६४-१६१६) के कार्यों, विशेषकर *'हेनरी फिफ्थ'* तथा *'किंग रिचर्ड द सेकिण्ड'* को इस दृष्टि से देखा गया। हेनरी फिफ्थ राजा कहता कि ''तुम अच्छे जवान हो जिसकी बाजुएँ इंग्लैण्ड की बनी है।'' इसी प्रकार की भावनाएँ जॉन मिल्टन (१६०८-१६७४), क्रामवेल जॉन लॉक (१६३२-१७०४) , ह्विगो, कोलिंगब्रक, टोरियो -सभी के द्वारा इंग्लैण्ड के गौरव बढ़ानेवालों के रूप में बताई गई है।

प्रमुख रूप से राष्ट्रीय अस्तित्व या पहचान को दूसरे देशों के साथ युद्धों ने बड़ा बल दिया। इसने राजनीतिक, आर्थिक, वंशीय, सांस्कृतिक, धार्मिक आधार भी प्रदान किया। हनटिंगटोन[२४] ने यह माना है कि युद्ध राज्य बनाते हैं तथा राष्ट्रों का निर्माण होता है। माइकल होवर्ड[२५] का भी कथन है कि कोई भी राष्ट्र शब्द के सही अर्थों में बिना युद्ध के राष्ट्र के रूप में जन्म नहीं ले सकता.....कोई भी स्वाभिमानी समुदाय विश्व में एक नवीन तथा स्वतन्त्र कर्ता के रूप में बिना सशस्त्र संघर्ष या चुनौती के स्थापित नहीं हो सकता।

अत: ब्रिटिश राष्ट्र का निर्माण युद्धों, मुख्यत: फ्रांस के साथ युद्धों तथा नेपोलियन के युद्ध स्वरूप हुआ। बार-बार फ्रांस के संघर्षों ने इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड तथा वेल्स के लोगों को फ्रांस के

विरोध में जोड़ दिया। इन संघर्षों तथा युद्धों को विश्व की प्रसिद्ध कैथोलिक शक्ति के विरुद्ध प्रोटेस्टेंटों का बतलाया गया। औद्योगिक क्रान्ति ने व्यापारिक तथा आर्थिक प्रतिस्पर्धा को भी बढ़ा दिया।

सर तेजबहादुर सप्रू (१८७५-१९४९) [२६] ने इसे 'वियना-सन्धि (१८१५ई०) का फल' बताया जिसने यूरोप की व्यापारिक प्रतियोगिता को बढ़ावा दिया। उल्लेखनीय है कि महर्षि अरविन्द यूरोप में राष्ट्रवाद को १८वीं या १९वीं शताब्दी की देन स्वीकार नहीं करते। उन्होंने स्पेंग्यूलर के मत को भी स्वीकार नहीं किया जिसने राजवंशों की समाप्ति के रूप में फ्रांस की क्रान्ति से इसमें महत्त्वपूर्ण तत्त्व देखे। वह मार्क्सवादी-विचारक के तर्क को भी स्वीकार नहीं करते जो उसे बुर्जुआ के आर्थिक हितों को तर्क संगत बताने की प्रक्रिया का नाम देते हैं। [२७] इंग्लैण्ड के पश्चात् फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल तथा डेनमार्क में इसका विकास हुआ। फ्रांस की क्रान्ति तथा नेपोलियन के युद्धों ने समूचे यूरोप अर्थात् मध्य तथा पूर्वी यूरोप में भी चेतना जगायी। यहाँ यह लिखना आवश्यक है कि इंग्लैण्ड से भी पूर्व जर्मनी में राष्ट्रीय चेतना तथा राष्ट्रीय भाव का विकास हुआ। १७४८ ई० में जर्मनी के विख्यात विचारक ज़ोहान गॉटफ्रेड हर्डर (१७४४-१८०३)[२८] ने *'आईडियाज़ ऑन फिलॉसॉफी एण्ड हिस्ट्री ऑफ मैनकाइण्ड'* नामक पुस्तक लिखी, जिसके कारण उन्हें जर्मनी के 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' का जनक माना जाता है। इस पुस्तक में उन्होंने किसी विदेशी तरीकों के अनुकरण का विरोध किया तथा उनका मत था कि सच्ची सभ्यता स्थानीय मूल से ही विकसित हो सकती है। उनके अनुसार एक भाषावाली जनता की अपनी विशिष्ट प्रवृति होती है। उनका कथन है कि 'प्रत्येक सभ्यता की एक आत्मा' होती है। यही राष्ट्रीय आत्मा का विचार जर्मनी में फैला। जॉन फिक्टे (१७६२-१८१४) से सन् १८०८ ई० में *'ऐड्रेसेज टू द जर्मन नेशन'* नामक पुस्तक के द्वारा जर्मन में राष्ट्रीय भावना का पितृभूमि के प्रति निष्ठा बढ़ायी। इसी विचार को आगे हीगेल (१७७०-१८३१) तथा लियोपोल्ड वॉन रैन्के (१७९५-१८८६) ने आगे बढ़ाया। यद्यपि जर्मनी का एकीकरण १८७१ ई० में हुआ तथापि उसमें प्रखर राष्ट्रवाद इंग्लैण्ड अथवा यूरोप के किसी अन्य देश से पूर्व हुआ। इसी भान्ति इटली के एकीकरण तथा रूस में भी राष्ट्रीयता की नव भावना आयी। २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इतना ही नहीं यूरोप के बूढ़े व्यक्ति-आटोमन से तुर्की-साम्राज्य में भी कुछ चेतना आयी। एशिया तथा अफ्रीका के अधिकतर देशों में यह राष्ट्रीयता की भावना प्रथम महायुद्ध के पश्चात् पनपी।

आधुनिक चिन्तकों, मुख्यत: होन्स कोहन [२९] तथा सी०जे०हेज़ ने १९वीं शताब्दी में प्रचलित राष्ट्रवाद को दो श्रेणी में बाँटा है। एक वे जिनका निर्माण पाश्चात्य जगत् में हुआ तथा दूसरे वे जो मध्य या पूर्वी यूरोप अथवा एशिया में विशेषकर जर्मनी, रूस तथा भारत में हुए। लुई लियों स्नाइडर (१९०७-१९९३) [३०] ने होन्स कोहन के दोनों विचारों का एक चार्ट के माध्यम से अन्तर बतलाया है।

लूई स्नाइडर ने अपनी व्याख्या करते हुए पाश्चात्य राष्ट्रवाद को एक बहुवादी तथा खुला समाज बतलाया जबकि गैर-पाश्चात्यवादी राष्ट्रवाद को एक अधिनायकवादी तथा बन्द समाज

बतलाया। इसी भान्ति उसने पाश्चात्य राष्ट्रवाद में राजनीतिक यथार्थ को महत्त्व देने वाला, समान इच्छा तथा समान भविष्य से जुड़ा एकजुट नागरिकों का समूह, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का इच्छुक, आत्मविश्वासी, आशावादी तथा शक्तिशाली मध्यवर्ग से समर्थित बतलाया। जबकि उसने गैर-पाश्चात्यवादी राष्ट्रवाद को शाश्वत एवं आदर्श पितृभाव रखनेवाला, लोक-समुदाय, सामूहिकता का प्रशंसक, आत्मचेतना हीन तथा कुलीन तथा जनता से समर्थित बतलाया।

पाश्चात्य जगत् की भ्रामक धारणा

सामान्य भारतीय राष्ट्रवाद के बारे में इसमें आवश्यक तत्त्वों के आधार पर विभिन्न विचारों का व्यक्त किया गया है। साधारणत: इन विचारों को दो प्रकार में विभक्त कर सकते हैं।

प्रथम श्रेणी में वे विचारक हैं जो यह मानते हैं कि भारत में राष्ट्रवाद पश्चिमी जगत् से लिया गया है। विशेषकर वे इसे इंग्लैण्ड की देन मानते हैं। उनके अनुसार अंग्रेज़ों से पूर्व भारत में न कोई राष्ट्रवाद का अस्तित्व था और न ही कोई राष्ट्रीय भावनाएँ ही थीं। उनके विचार में भारत में राष्ट्रवाद का उद्‌भव १९ वीं शताब्दी में हुआ।

प्रसिद्ध विद्वान ए०आर० देसाई [३१] का मत है, 'भारतीय-राष्ट्रवाद एक आधुनिक विचार है। इसका प्रारम्भ ब्रिटिश काल में अनेक क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं की व्यक्तिगत तथा निष्पक्ष शक्तियों द्वारा हुआ, जो भारतीय-समाज में ब्रिटिश शासन की अवस्था तथा विश्व की शक्तियों के कारण विकसित हुई।'

एक दूसरे प्रमुख इतिहासकार एस्०एल्० सीकरी [३२] ने भारत के राष्ट्रवाद के बारे में कहा, 'इसके आवश्यक तत्त्वों में कुछ बीज रूप में पैदा हुए, कुछ का विकास हुआ, कुछ ने इसका स्वरूप धारण किया और कुछ ने इसकी विचारधारा तथा तकनीकी को प्रभावित किया। अत: भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के उद्‌भव, विकास तथा तेजी से प्रगति के उत्तरदायी कारण विभिन्न तथा अनेकरूपी हैं।' इसी भान्ति एस्०सी० मिश्र भी भारत में राष्ट्रवाद का विकास १९ वीं शताब्दी में मानते हैं। उनके अनुसार भारत में राष्ट्रवाद का विकास १९वीं शताब्दी में ब्रिटिश राज्य की उपज है। वे इसे देश का राजनीतिक एकत्रीकरण, भारत के पुराने सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था का ध्वंस, आधुनिक शिक्षा-प्रणली, आधुनिक व्यापार तथा उद्योग का प्रारम्भ और नये सामाजिक वर्ग के उदय को राष्ट्रवाद का आधार मानते हैं। परन्तु अधिकतर भारतीय-विद्वान उपर्युक्त मत से जरा भी सहमत नहीं हैं। सर तेजबहादुर सप्रु [३३] ने कहा कि भारतीय राष्ट्रीयता निश्चित रूप से यूरोप की इस प्रादेशिक राष्ट्रीयता से भिन्न है जो १०० वर्ष की है।

वस्तुत: पाश्चात्य विद्वानों अथवा कुछ अंग्रेजी पढ़े लिखे भारतीय विद्वानों ने भी भ्रमवश यह बतलाया कि राष्ट्रवाद का चिन्तन मूलत: एक यूरोपीय विचार है। कुछ ने आगे बढ़कर यह भ्रम भी फैलाया कि यह इंग्लैण्ड की देन है तथा इसका विकास भारत में १९ वीं शताब्दी में हुआ। यह सोचना मूर्खता होगी कि प्रत्येक देश का ऐतिहासिक विकास यूरोप अथवा पश्चिमी जगत् की देन है। सत्य तो यह है कि इसका विकास विभिन्न कालों व विभिन्न परिस्थितियों में हुआ। वे परिस्थितियाँ तथा उत्तरदायी तत्त्व भी एकरूप न थे।

भारत एक पुरातन राष्ट्र

निश्चित ही भारतीय-राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता का विकास अत्यन्त प्राचीन है। यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है कि यह विश्व के प्राचीनतम राष्ट्रों में से एक है। कुछ का मत है कि अन्य प्राचीन राष्ट्र चीन, तारतर, अरब व फारस हैं।[३४]

यूरोपीय-राष्ट्रों के विपरीत भारत-राष्ट्र मूलत: सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक, सामूहिक व विवेक दृष्टि से सनातन धर्म (वैश्विक) पर आधारित है। इसकी प्रमुखता तथा बल राजनीतिक व आर्थिक के बजाय सांस्कृतिक तथा सामाजिक रहे हैं। यह धर्म पर आधारित है। किसी एक राजनीतिक शक्ति की अपेक्षा राजनीतिक शक्तियों के विकेन्द्रीकरण में विश्वास करता है। यह राज्यों के राष्ट्र पर विश्वास करता है, न कि राष्ट्रों के राज्य पर। यह एक विकासवादी राष्ट्र है, न कि परिस्थितियों की अचानक आवश्यकता तथा मांग की उपज है। यह किसी व्यापारिक या राजनीतिक प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता या संघर्ष का परिणाम नहीं है। वैदिक साहित्य में 'नेशन' शब्द को 'राष्ट्र' के रूप में कहा गया है। अत: राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद का चिन्तन उतना ही पुराना है जितनी वैदिक सभ्यता। राष्ट्रवाद का आधार प्राचीन संस्कृति रही है। यहाँ तक कि पाश्चात्य सभ्यता में रचे-पचे भारत के पूर्व प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने भी माना कि 'भारत की एकता का स्वप्न भारतीय के मस्तिष्क ने, सभ्यता के प्रारम्भ से ही स्वीकार किया।[३५]

भारत राष्ट्र के तत्त्व

सामान्यत: भारतीय-चिन्तकों ने राष्ट्र के लिए दो तत्त्वों को सर्वोच्च स्थान दिया है— प्रथम, निश्चित समान भूमि तथा दूसरा, जीवन के समान सांस्कृतिक मूल्य। पहले में भारत तथा इस भूमि के साथ यहाँ के लोगों का अटूट संबंध बतलाया है तथा दूसरे में सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों को विकसित तथा अस्मरणीय काल से बताया है।

अत: राष्ट्र का आधार भौगोलिक तथा सांस्कृतिक एकता रहा है। यह एक समान भूमि को दर्शाता है, जहाँ लोग रहते थे, जिनमें सांस्कृतिक एकता तथा परम्पराएँ थीं। अत: इसके अनुसार राष्ट्र किसी समझौते या सहमति का परिणाम नहीं है बल्कि यह स्वनिर्मित है। इसका शरीर भूमि तथा इसकी आत्मा संस्कृति है। इन दोनों तत्त्वों को विस्तार से जानना आवश्यक होगा।

मातृभूमि से अटूट प्रेम

भारतीय-मनीषियों ने राष्ट्रवाद के चिन्तन तथा व्याख्या का प्रथम प्रमुख आधार भूमि माना है। *यजुर्वेद* के कुछ मंत्रों में राष्ट्र के गुणों की चर्चा की गई है। इसके अनुसार राष्ट्र उन व्यक्तियों के मिलकर रहने से होता है जो एक निश्चित भूमि पर रहते हैं जो विवेक, बुद्धि को प्रमुखता देते हैं तथा आन्तरिक प्राकृतिक संकटों से सुरक्षा में सक्षम हैं।

भारत-राष्ट्र की विस्तृत व्याख्या तथा इसके भूमि से अटूट संबंधों का वर्णन *अथर्ववेद* के 'पृथिवीसूक्त' अथवा 'भूमिसूक्त'[३७] में किया गया है। यह व्याख्या भूमि अथवा मातृभूमि के प्रति ६३ अत्यन्त भावपूर्ण समर्पित मन्त्रों में की गई है। इसमें कहा गया है कि यह भूमि चारों ओर ऋषियों तथा

विभिन्न भाषाओं के बोलनेवाले तथा अनेक परम्पराओं को माननेवाले व्यक्तियों से आच्छादित है। कुछ विद्वानों ने इन पदों को 'वेदों का राष्ट्रीय गीत' कहा है।[३८] इसमें से कुछ मन्त्र निम्नलिखित हैं।

'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः'[३९] अर्थात् यह भूमि मेरी माता है तथा मैं पृथिवी का पुत्र हूँ। ***'सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्रय में पय'***[४०] यानि भूमि मेरी माता है जो मुझे दूध पिलाती है। इसी भान्ति एक मन्त्र में कहा है कि ***'भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्'***[४१] अर्थात् हे मातृभूमि मेरी रक्षा करें।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण मन्त्र में कहा है, ***'त्वज्जातास्तवयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः। तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्यः उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति'***[४२] अर्थात् मातृभूमि! (तुम्हारे शरीर से उत्पन्न हुए हम सब मनुष्य) तुम्हारे ऊपर संचार करते हैं। तुम ही द्विपादों और चतुष्पादों का संरक्षण तथा धारण-पोषण करती हो। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद– ये पञ्चजन निःसन्देह तुम्हारे ही पुत्र हैं। इनके लिए सूर्य उदय होकर प्रकाश देता है।

पृथिवीसूक्त के एक मन्त्र में आठ गुणों की याचना की गई है। मन्त्र है–'***सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवी धारयन्ति। सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु'***[४३] अर्थात् ये गुण हैं सत्य, उदारता का भाव, सरलता, दक्षता, सहन करने की शक्ति, ज्ञान एवं विज्ञान तथा श्रेष्ठ सज्जनों का सत्कार, परस्पर सहयोग तथा संरक्षण। इसके लिए प्राकृतिक सम्पदाएँ दी गई हैं, जैसे नदियाँ, पर्वत, वृक्ष व अन्य वनस्पतियाँ तथा खेतिहर समृद्धि।

मनु ने इस समुदाय की भूमि को देवताओं की देन कहा है।[४४]

विष्णुमहापुराण में अनेक स्थानों पर इस भूमि की प्रशंसा की गई है तथा भारतवर्ष को विभिन्न देशों में सर्वोत्तम माना है। वस्तुतः इस पुराण में एक पूरा अध्याय ही इसी से जुड़ा है। इसका एक सुप्रसिद्ध पद है–

'उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणं।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।'[४५]

अर्थात् समुद्र से उत्तर तथा हिमालय से दक्षिण-स्थित देश का नाम भारतवर्ष है तथा इसकी संतति भारती (भारतीय) हैं।

भारतीय-राष्ट्रवाद में लोगों की भूमि के प्रति अनन्य भक्ति रही है। मातृभूमि के प्रेम तथा समर्पण को सर्वोच्च, महानतम तथा पवित्रतम माना है। एक अन्य स्थान पर यह कहा गया है–

'न मे वाञ्छाऽस्ति यशसि विद्वत्त्वे न च वै सुखे।
प्रभुत्वे नैव वास्वर्गे मोक्षेऽप्यानन्द दायके।।
परन्तु भारते जन्म मानवस्य च वा पशोः।
विहंगस्य च वा जन्तोर्वृक्ष पाषाणयोरपि।।'

अर्थात् मैं किसी प्रकार की प्रतिष्ठा, ज्ञान, जीवन के सुखों, शक्ति, यहाँ तक कि स्वर्ग या

मोक्ष का इच्छुक नहीं हूँ; परन्तु मेरी मनोकामना है कि मेरा पुनर्जन्म भारत में हो, चाहे किसी एक मानव या एक जानवर या एक पक्षी या एक कीट-पतंग या एक पत्थर के रूप में ही क्यों न हो।

इसी भान्ति *वाल्मीकिरामायण* की किसी टीका में भगवान् श्रीराम ने मातृभूमि के प्रति अनन्य भक्ति को स्वर्ग से महान् माना है—

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गिरीयसी'

अर्थात् जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है।

इसी भान्ति *महाभारत* [४६] में भी राष्ट्र का यशोगान किया गया है। अत: सभी वैदिक या प्राचीन साहित्य में ***'पृथिव्यै: समुद्रपर्यन्ताया एकराट्'*** [४७] अर्थात् समुद्रों के तट की समस्त भूमि का एक राष्ट्र माना गया है।

अनेक ग्रन्थों में ***'आसेतुहिमाचलम्'*** एक राष्ट्र की बात है। आचार्य चाणक्य से लेकर राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' (१९०८-१९७४) ने पर्वतराज हिमालय का यशोगान किया है।[४८] चाणक्य ने समुद्रों के उत्तर में हिमालय का वर्णन करते हुए इसकी लम्बाई १,००० योजन बतलाई है—

'तस्यां हिमवत्समुद्रान्तरं उदीचीनं योजनसहस्रपरिमाणम्'। [४९]

महाकवि कालिदास ने हिमालय को दैवीय बतलाते हुए उसे सजीव तथा भावपूर्ण श्रद्धाञ्जलि देते हुए लिखा है—

'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज:।
पूर्वापरौ तोयनिधिऽवगाह्य स्थित: पृथिव्या इव मानदण्ड:।। [५०]

अर्थात् भारतवर्ष के उत्तर में देवस्वरूप पर्वतराज हिमालय स्थित है, पूर्व और पश्चिम में समुद्र का अवगाहन करता हुआ यह पृथिवी के मानदण्ड की भान्ति स्थित है।

अतीत से वर्तमान तक सदैव भारतीयों का अपनी मातृभूमि से अटूट प्रेम तथा भक्ति रही है। वर्तमान काल में स्वामी विवेकानन्द, श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, श्री अरविन्द, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघ चालक श्री माधवराव सादाशिव गोळवळकर (श्री गुरुजी) इत्यादि अनेक महापुरुषों ने मातृभूमि के प्रति अनन्य भक्ति दर्शाते हुए भारतीयों के मन की बात कही है। स्वामी विवेकानन्द [५१] ने स्पष्ट कहा कि इस पृथिवी पर कोई ऐसी भूमि है जिसे 'पुण्यभूमि' कहा गया है, जो किसी भी आत्मा को ईश्वर की ओर प्रवृत करती है, वह भारतभूमि है। उन्होंने भारतभूमि के प्रत्येक धूलकण को भी अत्यधिक पवित्र माना है। श्री गुरुजी ने विस्तार से समस्त हिन्दू-समाज की श्रद्धा का केन्द्र मातृभूमि को बतलाया है।[५२]

भारतभूमि के प्रति भक्ति तथा समर्पण - भाव

अतीत से वर्तमान तक हिन्दू-समाज का सदैव मातृभूमि के प्रति अटूट लगाव तथा प्रेम रहा है। भारत में तीर्थयात्राओं के आयोजन का प्रयोजन है— मातृभूमि की पूरी प्रदक्षिणा। इन यात्राओं के द्वारा भारतीय मातृभूमि के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हैं। ये तीर्थस्थल सम्पूर्ण भारतवर्ष में फैले हैं। इससे

मातृभूमि के आसेतुहिमाचलं स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। *महाभारत* के वनपर्व में नारद तथा धौम्य ऋषि द्वारा तीर्थों की विस्तृत सूची दी हुई है। *गरुड़महापुराण* के ६६ वें अध्याय में तीर्थस्थलों की सूची दी हुई है। *तन्त्रचूड़ामणि* में ५२ शक्तिपीठों का वर्णन है। इसी भान्ति *देवीभागवतपुराण* में १०८ तीर्थों की सूची दी है। *कालिकापुराण, शिवमहापुराण* तथा *स्कन्दमहापुराण* में अनेक स्थलों का वर्णन है। देश के चार कोनों पर चार धाम (१. ब्रदीनाथ, २. द्वारकापुरी, ३.जगन्नाथपुरी एवं ४. रामेश्वरम्) एवं क्रमश: इन्हीं कोनों पर जगद्‌गुरु आद्य शंकराचार्य द्वारा चार मठ (१. ज्योतिर्मठ, २. शारदामठ, ३. गोवर्द्धनमठ एवं ४. काञ्चीकामकोटिमठ) संस्थापित हैं। महाकुम्भों के पर्व हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन तथा नासिक में होते हैं। अत: देवदर्शन के निमित्त मातृभूमि का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं।

आज भी प्रत्येक हिन्दू भारतभूमि की पवित्र नदियों का स्मरण करता है तथा उसकी इच्छा रहती है कि जीवन में कम-से-कम एक बार इन पवित्र नदियों में स्नान करे। इस सन्दर्भ में पवित्र मन्त्र है—

'गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।'

हिन्दू समाज के दैनिक तथा लौकिक जीवन में बार-बार मातृभूमि का स्मरण किया जाता है। प्रात: उठते ही भूमि पर पाँव रखते ही वह क्षमायाचना करते हुए कहता है—

'समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नी नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व मे।।'[५३]

अर्थात् समुद्ररूपी वसन धारण करनेवाली और (चराचर प्राणिरूप अपनी सन्तानों के पोषण हेतु जीवनदायिनी नदियों-रूपी दुग्धधाराओं को जन्म देनेवाली) पर्वतों-रूपी स्तनोंवाली हे विष्णुपत्नी भूमाता! अपने ऊपर पैर रखने के लिए मुझे क्षमा करो।

प्राय: सभी धार्मिक रीति—रिवाज भूमि पूजन से प्रारम्भ होते हैं। किसी भी संकल्प के समय सम्पूर्ण भारत में ***'जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे....'***[५४] आदि कहकर मातृभूमि का स्मरण किया जाता है। सुश्री भगिनी निवेदिता (१८६७-१९११)[५५] का कथन है कि नियागरा का प्रपात यदि गंगा के तट पर होता तो भारत में इसका मूल्याकंन भिन्न प्रकार से होता।

अत: संक्षेप में यह माननीय है कि भारतीय राष्ट्रवाद का एक प्रमुख तत्त्व भूमि तथा उसके प्रति अनन्य भक्ति सदैव रही है।

समान सांस्कृतिक जीवन-मूल्य

मातृभूमि के प्रेम के अतिरिक्त भारत राष्ट्र का दूसरा आधारभूत तथा महत्त्वपूर्ण तत्त्व जीवन के सांस्कृतिक मूल्यों को माना गया है। इसने सम्पूर्ण समाज को युगों-युगों से सुदृढ़ रूप से जोड़ा हुआ है।

धर्म

जीवन के सांस्कृतिक मूल्यों में सर्वप्रथम भारत का वैशिष्ट्य धर्म तथा अध्यात्म है। धर्म

जीवन को उदात्त एवं विशाल बनाता है। 'धर्म' शब्द का भाषान्तर अथवा पयार्यवाची अंग्रेजी का न 'रिलीजन' है और न ही मुस्लिमों का 'मजहब'।

'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से बना है। कहा गया है कि ***'धारयते इति धर्मः'।*** अर्थात् जो धारण करने योग्य है, वह धर्म है। अतः जिसमें समाज की धारणा होती है, वही धर्म है। धर्म का अर्थ 'कर्तव्य' है। धर्म शब्द किसी विशेष, सर्वोच्च रक्षक या पैगंबर या किसी विशेष पुस्तक, संगठित स्थल या निश्चित नियमों पर आधारित नहीं है।

सभी सम्प्रदायों के प्रति समभाव का विचार *ऋग्वेद* [५६] में मूल रूप से है जहाँ ***'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति'*** अर्थात् सत्य एक है जिसे विद्वान अलग-अलग ढंग से व्यक्त करते हैं।

धर्म का धर्मांतरण या हिंसा से कोई संबंध नहीं है। यह सर्वदा सकारात्मक, जनहितकारी तथा मानवता का रक्षक होता है। धर्म के दो अर्थ हैं— पहला, व्यक्तित्व का विकास तथा दूसरा, सामाजिक व्यवस्था का निर्माण। कणाद ने धर्म का उद्देश्य बतलाया है— ***'यतोऽभ्युदयनिः - श्रेयससिद्धिः स धर्मः'*** [५७] अर्थात् जिससे इस जीवन में पूर्ण सुख और परलोक में शान्ति मिले, वही धर्म है।

धर्म की देश की एकता में तथा सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में प्रमुख भूमिका रहती है। यह एक ऐसा महत्त्वपूर्ण साधन रहा जिसने राष्ट्रवाद तथा देश की एकात्मकता को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

भारत के प्राचीन साहित्य—वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण एवं आरण्यक-ग्रन्थों, उपनिषदों, पुराणों, स्मृतियों तथा धर्मशास्त्रों में इसकी विस्तृत चर्चा की गई है। धर्म, व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र-जीवन को एक करने की कड़ी है। धर्म ने अनेक विचारों को जोड़ा तथा असहिष्णुता तथा अलगावपन को त्यागा तथा अस्वीकार किया।

धर्म इसलिए भी एक महत्त्वपूर्ण तत्व है जो व्यक्ति की पहचान [५८] से जुड़ा है। यह मानव व मानवता के संबंधों को दर्शाता है। अतः मानवी प्रगति की पूर्णता का बोध कराता है। सन् १९१५-१८ ई० के दौरान श्रीअरविन्द ने अपने *'आर्य'* (वॉल्यूम २, न०२- वॉल्यूम ४, नं० १२) में प्रकाशित लेखों में जो बाद में एक पुस्तक [५९] के रूप में प्रकाशित हुए, धर्म के मर्म को समझाया है। श्री अरविन्द मानवीय एकता के विकास की प्रक्रिया का वर्णन करते हैं। वे मानव के संबंध क्षेत्र, समाज तथा राज्य से बतलाते हैं। उनका मत है कि संगठित राज्य, न ही राष्ट्र का सुन्दरतम मन है, और न ही समुदाय की ऊर्जा का योग। बल्कि वे इसे सामूहिक अहंकारवाद बतलाते हैं जो समुदायों की योग्यता से भी निम्न हैं। वे राष्ट्र के विचार को स्वाभाविक मानते हैं। उनके अनुसार राज्य केवल एकरूपता चाहता है जो अन्ततोगत्वा जीवन नहीं है। उनके अनुसार जीवन विविधता में है। मनुष्य का विकास व्यक्ति के आस-पास जुड़े व्यक्तियों, परिवार, कुटुम्ब, कबीले, राज्य तथा राष्ट्र से होता है और तब कहीं जाकर सम्पूर्ण मानवता का विचार विकसित होता है। वे राज्य के विचार को क्षुद्र तथा जीवित मशीन की भान्ति मानते हैं तथा मानव का विचार उदात्त तथा ईश्वर के निकट मानते हैं।

भारत एवं सनातन धर्म

भारतीय-धर्म की एक महान् देन इसका एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण है। इसे सनातन धर्म कहा गया है। यह मानवीय दृष्टि प्रकृति तथा उसके विभिन्न उपांगों में देखती है। इस दृष्टि से राष्ट्र के प्रति भारतीय दृष्टिकोण पाश्चात्य दृष्टिकोण से भिन्न है। यहूदी-ईसाई (Judeo-Christian)-परम्परा के प्रारम्भ से, पश्चिम का नाता प्रकृति से टूट गया तथा वे इसे अधिक-से-अधिक निर्जीव समझकर उसका शोषण करने की वस्तु समझने लगे। इसको उनके पारम्परिक ग्रन्थ *ओल्ड टेस्टामेन्ट और जेनेसिस* से देखा जा सकता है। जब छठे दिन जाहोवल घोषणा करता है कि हमें मनुष्य का अपना चित्र बनाना चाहिए। हमें इच्छानुकूल समुद्र की मछलियों पर, आकाश में पक्षियों पर, पशुओं पर, तमाम पृथिवी पर तथा पृथिवी पर घूमनेवाले सभी जीवों पर राज्य करना चाहिए [६०] और उसने नवजात व्यक्ति से कहा, ''पृथिवी पर अपना आधिपत्य करो।'' इसके विपरीत भारत की सांस्कृतिक परम्परा पृथिवी को एक देवी अर्थात् भूदेवी, नदियों को देवियाँ, पर्वतों को देवता, अनेक वृक्षों को पवित्र, यहाँ तक अनेक पौधों और फूलों को रीति-रिवाजों में प्रयोग करते हैं। लगता है कि समस्त राष्ट्र दैवीय शक्ति से व्याप्त है। [६१] हिन्दुओं के लिए प्रकृति प्राकृतिक साधनों का एक मृत ढेर नहीं बल्कि सुन्दरतम सुरक्षा है।

एक विद्वान के अनुसार [६२], सनातन धर्म आत्मा-धर्म है, और इसीलिए यह विश्व-धर्म है। यह अनेक सम्प्रदायों की माता है। वह लिखता है, [६३] सनातन धर्म एक पाठ सिखाता है— अयथार्थ से यथार्थ की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर। वह तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर कहता है कि समस्त आधुनिक सेक्युलर-विचारक आदमी में जानवर का बीज-रूप देखता है जबकि सनातन धर्म जानवरों में ईश्वर, उसकी शक्ति तथा देवताओं की उपस्थिति देखता है। यह धर्म जानवरों के प्रति सद्व्यवहार सिखाता है, यह जीव-दया सिखाता है। [६४]

सनातन धर्म सिखालाता है कि मानव एक महान् समुदाय से संबंध रखता है। मानव एक जागतिक प्राणी है। मानव एक व्यापक तथा नैतिक दृष्टि होने से एक सच्चे, बड़े तथा दयालु संस्कृति को आधार दे सकता है।

अनेक महापुरुषों, जैसे— स्वामी विवेकानन्द, श्रीअरविन्द, पं. मदनमोहन मालवीय (१८६१-१९४६), महात्मा गांधी (१८६९-१९४८) आदि ने सनातन धर्म के सांस्कृतिक मूल्यों का विस्तृत विश्लेषण किया है। श्रीअरविन्द [६५] ने सनातन धर्म को मानवीय कल्याण का निर्माता कहा है। वे सनातन धर्म को भारत की आत्मा व राष्ट्रवाद कहते हैं। मालवीय जी का कथन है कि सनातन धर्म विश्व की सर्वप्रिय वस्तु है। [६६] एक प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल (१९०४-१९७२)[६७] ने सनातन धर्म के विचार पर विस्तृत अध्ययन किया। उनके अनुसार इसकी उत्पत्ति से वर्तमान तक इसका वैशिष्ट्य, मानव का चहुँमुखी विकास है। डॉ० रमाकान्त अंगिरस् (जन्म-१९३६) [६८] ने इसे जीवन के प्रति विशाल दृष्टि बतलाया जो न किसी सम्प्रदाय से जुड़ी है

और न किसी व्यक्ति से, बल्कि मानवता के कल्याण से जुड़ी है। प्रसिद्ध चिन्तक श्री सीताराम गोयल (१९२१—२००३) ने सूक्ष्मता के साथ सनातन धर्म का दार्शनिक—अध्ययन किया। उनके अनुसार यह ***'यत्पिण्डे तत्ब्रह्माण्डे'*** पर आधारित है।[६९] यह बीज-रूप है।

अत: सनातन धर्म के विश्वव्यापी स्वरूप का विभिन्न शब्दावली में अनेक विद्वानों ने बतलाया है। इसे 'शाश्वत जीवन-मूल्य', 'शाश्वत विश्वास'[७०],'शाश्वत परम्परा'[७१], 'विश्व-चेतना','सर्व धर्म'[७२] आदि कहा गया है।

श्री अरविन्द ने अपने उत्तरपाड़ा-भाषण में[७३] हिन्दू-धर्म का उदय तथा विकास सनातन धर्म से बतलाया है। उनके अनुसार हिन्दू-धर्म ही इसका सच्चा राष्ट्रवाद[७४] या राष्ट्रीयता है। सनातन धर्म की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें जीवन के विभिन्न पहलू विद्यमान हैं। इसमें व्यक्ति के जन्म, बचपन, शिक्षा, विवाह, जीविका तथा विवेकपूर्ण जीवन है। संक्षेप में इसमें जीवन के चारों पुरुषार्थ— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष विद्यमान हैं।[७५]

अत: सनातन धर्म हिन्दू-समाज का आध्यात्मिक केन्द्र है। यह दर्शाता है कि मानव-आत्मा में ***'सत्यं शिवं सुन्दरम्'*** एक शक्ति आध्यात्मिक प्रेरणा है जो प्रत्येक मानव में प्रत्येक क्षण रहती है।

श्री अरविन्द ने सनातन धर्म को शाश्वत अथवा विश्व-धर्म बतलाते हुए दो सन्देश दिये— प्रथम, राष्ट्र के माध्यम से गरीबों की सहायता तथा दूसरा, सनातन धर्म का प्रचार करना। उन्होंने कहा, ''यह सनातन धर्म है तो शाश्वत धर्म है जो इससे पूर्व आप न जानते थे, परन्तु अब मैं आपके सम्मुख इसे रख रहा हूँ।..... जब यह कहा जाता है कि भारत का उदय होगा, यह सनातन धर्म ही है, जिसका उदय होगा, जब यह कहा जाता है कि भारत महान् होगा, यह सनातन धर्म ही है जो महान् होगा, जब यह कहा जाता है कि भारत का विस्तार और फैलाव होगा, यह सनातन धर्म ही है, जिसका विश्व में विस्तार तथा फैलाव होगा। यह धर्म के लिए और धर्म के द्वारा है तथा इसी के लिए भारत अस्तित्व में है।''[७६]

श्री अरविन्द के अनुसार यही धर्म भौतिकवाद पर विजय पा सकता है। यही धर्म मानवता को ईश्वर की ओर ले जा सकता है।

उन्होंने अपनी बात को निष्कर्ष रूप में कहा था कि, ''हिन्दू-राष्ट्र का जन्म सनातन धर्म के साथ हुआ। इसके साथ ही यह गतिवान् तथा विकसित होता है। जब सनातन धर्म का पतन होता है, तब राष्ट्र का भी पतन होता है। यदि सनातन धर्म नष्ट होता है तो राष्ट्र भी नष्ट होगा। सनातन धर्म ही राष्ट्रवाद है।[७७]

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि भारत के सर्वोच्च न्यायालय के भी कई महत्त्वपूर्ण निर्णय हैं[७८] जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्र हिन्दुत्त्व, 'हिन्दुइज़्म', हिन्दू-संस्कृति या भारतीय संस्कृति अथवा सनातन धर्म किसी भी ढंग से संकुचित अर्थ में नहीं प्रयुक्त हुआ है, बल्कि यह एक जीवन-मार्ग को बतलाता है, यह 'रिलीजन' (मज़हब) के दायरे में नहीं आता जो मुख्यत: एक प्रकार की पूजा-पद्धति से जुड़ा है। प्रसिद्ध लेखिका केरी ब्राउन ने[७९] अपनी पुस्तक *'द इसेन्सल*

टीचिंग्स ऑफ हिन्दुइज्म' (१९८८) में लिखा है, 'वह संस्कृति, जिसे हम हिन्दुइज्म के नाम से जानते हैं और जिसे हिन्दू सनातन धर्म- शाश्वत् नियम कहते हैं, हजारों साल से है। यह एक सैद्धान्तिक भाव से इससे अधिक है जिसे पाश्चात्य जगत् 'रिलीजन' के रूप में समझते हैं। किसी ईश्वर में आस्था रखे या न रखे, फिर भी वह हिन्दू है। यह एक जीवन का मार्ग है, एक मन की आस्था है।'

अत: संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिन्दू-धर्म 'रिलीजन' नहीं है, यह सनातन धर्म या मानव-धर्म है, जो विश्वव्यापी सन्देश देता है तथा जो विश्व-बंधुत्व में भी विश्वास रखता है। सार-रूप में धर्म व्यक्ति, समाज व राष्ट्रीय जीवन को जोड़ने वाला तत्त्व है।

आध्यात्मिकता

आध्यात्मिकता भारत में सदैव परिवर्तन की मार्गदर्शिका भावना रही है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की प्रक्रिया का समाज में परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया जा सकता है। आध्यात्मिकता, धर्म तथा सामाजिक चेतना को बढ़ाती है और चेतना से सामूहिक जागृति आती है, जो आध्यात्मिकता राष्ट्रवाद होता है। स्वामी विवेकानन्द ने आध्यात्मिकता को भारत की आत्मा माना है। यह युगों से भारतीय-मस्तिष्क का निर्णायक तत्त्व रहा है। यह जीवन-मूल्यों से जुड़ा हुआ है। यह इस देश तथा यहाँ के लोगों के जीवन को मोड़ने तथा दिशा देने का प्रमुख तत्त्व रहा है। भारतीय-जीवन का दार्शनिक विवेचन तथा विश्लेषण, जैसे– कर्म का दर्शन, पुनर्जन्म का सिद्धान्त, आत्मा की अमरता तथा धर्म के बारे में पूर्ण स्वतन्त्रता, आध्यात्मिकता की ही उपज है। ये वैश्विक मूल्यों, अन्तर आस्थाओं के प्रति सहयोग तथा सभी सम्प्रदायों को सम्मान देती है। [८०] वस्तुत: यह मानवीय संबंधों, मानवता के अस्तित्व तथा राष्ट्रीय एकत्व का साधन है।

स्वामी विवेकानन्द ने आध्यात्मिकता को भारतीय-जीवन का 'जीवन-रक्त' माना है। वे लिखते हैं, ' हमारा जीवन-रक्त आध्यात्मिकता है। यदि यह सीधे बहता है, यदि यह मज़बूती से बहता है और शुद्ध तथा बलवान् बनानेवाला है, तो प्रत्येक वस्तु ठीक है। राजनीतिक, सामाजिक, भौतिक कमियों के होते हुए भी, यहाँ तक कि भूमि की कमी पर भी, सभी ठीक हो जाएगा यदि रक्त शुद्ध है..... यह वह भूमि है जहाँ आध्यात्मिकता तथा दर्शन की सम्पूर्ण लहरें बार-बार उठती है तथा विश्व की बड़ी बाढ़ लाती हैं, और यह भूमि है जिससे मानवता की पतनोन्मुख जातियों में जीवन की व्यवस्था तथा शक्ति देने वाली ऐसी लहरें पुन: उठेंगी। [८१]

सम्भवत: राष्ट्रवाद के उपर्युक्त विचार ने २० वीं शताब्दी के जर्मन-दार्शनिकों तथा समाजवेत्ताओं को भी प्रभावित किया। स्पेंगलेर (१८८०-१९३६) ने लिखा कि, राष्ट्र, न ही भाषा अथवा जीवविद्या (बायोलॉज़िकल) हैं बल्कि आध्यात्मिक इकाइयाँ हैं और किसी राष्ट्र की अधिक दृढ़ता उसकी आत्मिक एकत्व से है न किसी अन्य तत्त्व से।'

इंग्लैण्ड के पूर्व प्रधानमन्त्री रैम्ज़े मैक्डोनाल्ड (१८६६-१९३७) ने भी स्वीकार किया तथा प्रशंसा की कि भारतीय 'भारत' की पूजा अपनी आध्यात्मिक संस्कृति के कारण करते हैं। [८२] परन्तु कुछ आधुनिक आलोचक भ्रमित हैं जो यह महसूस करते हैं कि भावात्मक तथा आध्यात्मिक का

परस्पर संयोग अतीत के चिन्तन की पुनरुक्ति है। वे विद्यार्थियों के लिए आगे बढ़ानेवाला पाठ्यक्रम चाहते हैं। उन्हें लगता है कि भविष्य के लिए एक नया 'ब्लू प्रिन्ट' चाहिए। परन्तु यह एक सही पग नहीं है बल्कि एक दु:खद प्रक्रिया है जो भविष्य की ओर , बिना अतीत की ओर झाँके होगी।[८३]

भाषा और साहित्य

अथर्ववेद के अनुसार भारतीय-राष्ट्र, भारतीय प्रान्तों, ऋषियों तथा विद्वानों की देन है। वैदिक साहित्य जीवन के सांस्कृतिक मूल्यों पर प्रकाश डालते हैं। विभिन्न भाषाओं, परम्पराओं, जातियों के होते हुए भी भारतीय-ऋषियों ने सुन्दर भविष्य के लिए समान भावनाएँ तथा आकांक्षाएँ व्यक्त की हैं। संस्कृत संसार की प्राचीनम भाषा है[८४] जो अतुल आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक-ज्ञान का भण्डार है।[८५]

संस्कृत भारत की महानतम सांस्कृतिक विरासत है। संस्कृत १९वीं शताब्दी तक सम्पूर्ण भारत को जोड़नेवाली एकता की कड़ियों में एक रही। यह भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को परस्पर मिलाने तथा संबंधों को बढ़ाने की शक्ति रही। यह समान विरासत तथा समान राष्ट्रीयता का प्रतीक रही।[८६] यह एक उच्च कोटि की अति श्रेष्ठ भाषा है, न केवल भारत की, बल्कि एशिया के एक बड़े भाग की भी।[८७] भारतीय-जन तथा सभ्यता संस्कृत की गोद में ही पली तथा ऐतिहासिक विकास में इसके साथ विकास हुआ तथा उनके उत्तम चिन्तन तथा संस्कृति के विश्लेषण को स्थान मिला, जो आज भी अमूल्य पैतृक सम्पत्ति के रूप में न केवल भारत को, बल्कि विश्व को प्राप्त है।[८८]

इतना ही नहीं संस्कृत के द्वारा मानसिक तथा आध्यात्मिक संबंध ग्रीक व लैटिन की बड़ी बहन के रूप में तथा आंग्ल, फ्रेंच तथा रशियन से चचेरी बहिन के रूप में स्थापित हुए।[८९]

परन्तु संस्कृत की प्रगति में अवरोध का पहला प्रयत्न ईस्ट इण्डिया कम्पनी सदस्य लॉर्ड मैकाले (१८००-१८५९) ने १८३५ ई० में अपनी शरारतपूर्ण शिक्षा-टिप्पणी के द्वारा किया, जिसमें उसने संस्कृत को अस्वीकृत किया। उसने इस भाषा को न केवल लाभहीन तथा निष्फलदायी बतलाया बल्कि संस्कृत के व्याकरण को 'बेहूदा'[९०] कहा। उसने संस्कृत-संस्थाओं तथा संस्कृत के विद्वानों को अनुदान या छात्रवृत्तियाँ देने को 'रिश्वत' बतलाया। वस्तुत: यह भारत के मौलिक चिन्तन तथा भारतीय-संस्कृति, परम्पराओं तथा सांस्कृतिक भाषा पर सीधा प्रहार था।[९१]

परन्तु उपर्युक्त घातक टिप्पणी के द्वारा संस्कृत को हटाने, विस्मृत अथवा अस्वीकार करने तथा स्कूलों तथा कॉलेज़ों में इसके अध्ययन को रोकने के पश्चात् भी, भारतीय-विद्वानों तथा नेताओं ने इसके अध्ययन तथा पाठन को सतत बनाए रखा। इसे भारत के अतीत के गौरव तथा सांस्कृतिक ज्ञान-भण्डार के रूप में देखा गया। इतना ही नहीं, विश्व के अनेक विद्वानों ने इसकी बौद्धिक समृद्धि तथा विश्वव्यापी दृष्टिकोण को सराहा।[९२] ऐसे वैदेशिक विद्वानों में प्रो० फ्रेंज बोप्प (१७९१-१८६७), मि० ड्यूब्योस, विल्हेल्म वॉन हम्बोल्ट (१७६७-१८३५), प्रो० आर्थर एंथोनी मैक्डॉनेल (१८५४-१९३०), विल ड्यूरेन्ट (१८८५-१९८१) ने संस्कृत के प्रति तथा इसमें निहित

ज्ञान के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है। फ्रेडरिक मैक्समूलर (१८२३-१९००)[९३] ने संस्कृत को विश्व की महानतम भाषा कहा। बिल डयूरेन्ट ने संस्कृत को सभी यूरोपीय-भाषाओं की माता कहा।[९४] प्रसिद्ध प्राच्यविद् सर विलियम जोन्स (१७४६-१७९४) ने सन् १७८६ ई० में संस्कृत को ग्रीक से ज्यादा पूर्ण, लैटिन से ज्यादा प्रचुर तथा दोनों से उत्कृष्ट कहा और उसने इसकी महत्ता न केवल भारत, अपितु समस्त विश्व के लिए स्वीकार की है।[९५]

भारतीय चिन्तकों तथा विचारकों, जैसे– स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८८४-१८८३), श्री अरविन्द, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, बालगंगाधर तिलक (१८५६-१९२०) ने भारतीय-राष्ट्र को, यहाँ की जनता को अपने अतीत के साहित्य तथा सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों से प्रेरित किया। उदाहरणत: श्री अरविन्द ने संस्कृत भाषा को बहुत उत्कृष्ट, बहुत पूर्ण, बहुत स्थायी तथा आश्चर्यजनक उपयुक्त साहित्यिक अस्त्र बतलाया जिसने मानव-मस्तिष्क को विकसित किया। स्वामी विवेकानन्द, जिन्हें 'आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद का पिता' कहा जाता है, ने उपनिषदों तथा गीता को उत्तम तथा महानतम दर्शन बतलाया। स्वामी दयानन्द ने *'सत्यार्थ प्रकाश'* के माध्यम से विश्व में वेदों की महत्ता को बतलाया।

आधुनिक नेताओं– महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू (१८८९-१९६४) व डॉ० भीमराव अम्बेडकर (१८९१-१९५६) ने संस्कृत भाषा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। महात्मा गाँधी का मत था कि संस्कृत के अध्ययन के बिना कोई सच्चा भारतीय या सच्चा विद्वान नहीं बन सकता है।[९६] पं० जवाहरलाल नेहरू ने भी माना तथा लिखा[९७] 'यदि कोई मुझसे पूछे कि भारत के पास कौन-सा सबसे बड़ा खजाना है तथा कौन-सी सुन्दरतम् विरासत है, मैं बिना हिचकिचाहट के कहूँगा कि यह संस्कृत भाषा तथा उसका साहित्य है और इनमें जो निहित है, यह एक शानदार पैतृक धन है और जबतक यह हमारे लोगों के जीवन को दृढ़ रखता है तथा प्रभावित करता है तब तक भारत की अपूर्व बुद्धि को बनाए रखता है। यदि हमारी कौम बुद्ध को, उपनिषदों को व महाकाव्यों (रामायण तथा महाभारत) को भूल गई तो भारत, भारत नहीं रहेगा।

यह एक ज्ञात तथ्य है कि डॉ० भीमराव अम्बेडकर उन व्यक्तियों में से थे, जो भारतीय संविधान की आधिकारिक भाषा संस्कृत बनाना चाहते थे।[९८] सम्भवत: उन्होंने एक वक्तव्य भी दिया था कि संस्कृत स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए।[९९] उनके विचारों में संस्कृत आध्यात्मिक-वैज्ञानिक भाषा है और एक प्राचीन भाषा है, जिसका बहुत शुद्ध व्याकरण है।[१००] यहाँ यह लिखना महत्त्वपूर्ण होगा कि भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने एक निर्णय, जो यहाँ एक रिट पेटिशन सन्तोष कुमार- विरोध-सचिव, मानव-संसाधन विभाग (१९९४(६)सुप्रीम कोर्ट ५७९) के संबंध में था, संस्कृत भाषा के बारे में स्पष्ट रूप से कहा–[१०१]

> ***'यह अच्छी तरह ज्ञात है कि संस्कृत सभी इण्डो-आर्यन भाषाओं की जननी है और यह भाषा है जिसमें हमारे वेदों, पुराणों तथा उपनिषदों को लिखा गया है और जिसमें कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट और दण्डी***

ने अपने उच्च कोटि के ग्रन्थों को लिखा। शंकराचार्य, रामानुज, मध्वाचार्य, निम्बार्क और बल्लभाचार्य की शिक्षाएँ भारतीय-संस्कृति के ताने बाने में न बुनी जातीं, यदि संस्कृत उनके पास अपने विचारों को व्यक्त करने को न प्राप्त होती।'

अत: संक्षेप में संस्कृत-भाषा तथा भारत का प्राचीन साहित्य युगों से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के अमूल्य अस्त्र रहे हैं। यह संस्कृत-भाषा ही है कि जिसके द्वारा भारतीय-सभ्यता का विकास, भारतीय जीवन-मूल्यों की महानता, मानवी भावों का सार, वैदिक काल से वर्तमान काल तक समझा जा सकता है। इसका ज्ञान न केवल भारत को, बल्कि पूर्ण विश्व की जानकारी के लिए आवश्यक है।

सन्दर्भ सूची:

१. इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, भाग १६, पृ० ६०; भाग १२, पृ० ८५१
२. होन्स कोहन, द आइडिया ऑफ नेशनलिज्म (न्यूपार्क, १९३८ संस्करण)
३. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज, भाग १२, पृ० २३१
४. विष्णुमहापुराण, २.३.२४
५. महाभारत, शान्तिपर्व
६. स्वामी विवेकानन्द, द कम्पलीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द, भाग ५ (कोलकाता १९८९), पृ० ४६१; सतीश चन्द्र मित्तल, भारतीय राष्ट्र-चिन्तकों का वैचारिक दर्शन तथा इतिहास दृष्टि, पृ० ५९-७०
७. विस्तार के लिए देखें, धनंजय कीर, लोकमान्य तिलक, : फादर ऑफ अवर फ्रीडम स्ट्रगल (मुम्बई, १९५९)
८. श्रीअरविन्द, सनातन धर्म, उत्तरपाड़ा स्पीच (पाण्डिचेरी, १९७२), पृ० १४
९. श्रीअरविन्द, स्पीचेज (पांडिचेरी, १९५२); धर्म और जातीयता (बनारस, १९३४): शिव कुमार गोयल, श्रीअरविन्द इन्टीग्रल अप्रोच टू पालिटिकल थॉट (नयी दिल्ली, १९८१) पृ० १८२-१८५
१०. श्री अरविन्द स्पीचेज
११. एम०एल० पण्डित, श्री अरविन्द (नयी दिल्ली, १९८५) देखें, मृणालिनी को पत्र
१२. श्याम खोसला एवं वी०के० कुथियाल (सं०) हिन्दू नेशलिज्म: ए कन्टमपरेरी पर्सपैक्टिव (देखें, लेख, डॉ०मुरली मनीहर जोशी, 'नेशनल आडेनटीज एण्ड श्री गुरुजी' (चण्डीगढ़ २००९), पृ० १९-३५
१३. पाञ्चजन्य, ३१ जनवरी,१९९३
१४. डॉ० सत्यनारायण दूबे, आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएँ (संशोधित संस्करण, १९८९), पृ० ३३५
१५. वही, पृ० ३३५
१६. वही, पृ० ३२९
१७. वही, पृ० ३३९
१८. वही, पृ० ३३५
१९. विस्तार के लिए देखें, सतीश चन्द्र मित्तल, इण्डिया डिस्टॉर्टेड: ए स्टडी ऑफ ब्रिटिश हिस्टॉरियन्स ऑन इण्डिया, भाग-२ (नयी दिल्ली , १९९६), पृ० १६०
२०. इ० एच० कार, नेशनलिज्म (रायल इंस्टीट्यूट ऑफ इन्टरनेशनल अफेयर्स, न्यर्योक, १९४५), पृ. ७
२१. वही , पृ. ९, फुटनोट
२२. वही, पृ.१४-२०
२३. सी०जे०एच० हैज़ नेशनलिज्म, ए रिलीजन (न्यूयॉर्क, १९४०) पृ० ३९

२४. श्याम खोसला व कुठियाल, पूर्वोद्धृत, पृ० २१
२५. वही, पृ. २१
२६. दुर्गादास, भारत: कर्जन से पहले तथा उसके पश्चात् (१९७१ का संस्करण) , पृ० २०५
देखें, समाजवाद का शब्दकोश, उद्धृत (भारतीय-संस्कृति-प्रचार समिति), शासकीय राष्ट्र और सांस्कृतिक राष्ट्र (भोपाल, १९९९), पृ० १४,
२७. एस. सी० मित्तल, भारतीय–राष्ट्रचिन्तकों का वैचारिक दर्शन तथा इतिहास–दृष्टि (हैदराबाद,२००१), पृ.७८

२८. विस्तार के लिये देखें , हृदयनारायण दीक्षित, 'राष्ट्रवाद : भारत और योरुप', राष्ट्रधर्म (जून २००३), पृ०१५
२९. होन्स कोहन, द आइडिया ऑफ नेशलिज्म, पृ० ३२९—३३१
३०. लुई लियो स्नाइडर, वैरायटीज ऑफ नेशनलिज्म : ए कम्पेयरेटिव स्टेडी (इलोनियस, १९७६) पृ०३०—३१
३१. ए०आर० देसाई, सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म
३२. एस. एल. सीकरी, राइज एण्ड फुलफिलमेंट ऑफ इण्डियन नेशनल मुवमेंट (१९७१)
३३. दुर्गादास, पूर्वोद्धृत, पृ० २०५
३४. विलियम जोन्स, देखें, सर विलियम जोन्स का तीसरे वार्षिक अधिवेशन, एशियाटिक सोसाइटी में अध्यक्षीय भाषण , ०९ फरवरी, १७८६, एशियाटिक रिसर्चेज, भाग-१ (१८८४ का संस्करण), पृ०३४५
३५. पं० जवाहरलाल नेहरू, द डिस्कवरी ऑफ इण्डिया (न्यूयार्क, १९४६)
३६. शुक्लयजुर्वेद, २१-२२
३७. अथर्ववेद, काण्ड १२ सूक्त १, मन्त्र १-६३
३८. क्षीतीश वेदालंकार (सं०) सातवळेकर-अभिनन्दन-ग्रन्थ, दिल्ली, पृ० ५३-७१
३९. अथर्ववेद, पुरुषसूक्त, १२.१.१२, डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी, नेशनलिज्म एण्ड हिन्दू कल्चर (संशोधित संस्करण, १९५७, दिल्ली), पृ० १२
४०. अथर्ववेद, १२.१.१०
४१. वहीं १२.१.६३ प्रियव्रत वेदवाचस्पति, वेदों का राष्ट्रीय गीत
४२. वही १२.१.१५
४३. वही, १२.१.१
४४. मनुस्मृति: राधाकुमुद मुखर्जी, पूर्वोद्धृत, पृ० १४
४५. विष्णुमहापुराण, २.३.१; ब्रह्ममहापुराण, १९.१
४६. महाभारत, शान्तिपर्व
४७. ऐतरेयब्राह्मण, ८.३९.१५
४८. देखें, सन् १९३३ में रचित प्रसिद्ध कविता 'हिमालय'
४९. अर्थशास्त्र, ९.१.१८
५०. कुमारसम्भवम्, १.१
५१. एकनाथ रानाडे (संकलित) उतिष्ठत जाग्रत (कानपुर, १९६३), पृ० ३
५२. विस्तार के लिए देखें, श्री गुरुजी समग्र दर्शन, खण्ड-४ (नागपुर, १९७४), पृ० १६६-१७०; एम० एस०गोळवळकर, बंच ऑफ थाट्स (बेंगलूरू, १९६६), पृ० ८८
५३. विश्वामित्रस्मृति, १.४४-४५
५४. संकल्प-पाठ
५५. राधाकुमुद मुखर्जी, पूर्वोद्धृत, पृ०३३

५६. ऋग्वेद, १.६४.४६
५७. वैशेषिकर्शन, १.१.२
५८. बद्रीनाथ चतुर्वेदी, रीजन, 'नेशन एण्ड प्रिंसिपल आफ डायवर्सिटीज़', टाईम्स ऑफ इण्डिया, ०९जून,१९९०
५९. श्री अरविन्द, द आइडियल ऑफ ह्यूमन यूनिटी, (चेन्नई, १९९९)
६०. ओल्ड टेस्टामैन्ट १.२६ व १.२८ देखें, माइकेल डेनिनो, द इण्डियन माइण्ड: दैन एण्ड नाऊ (कनाडा, २०००),पृ० ८१
६१. वही, पृ० ८४
६२. रामस्वरूप, ऑन हिंदुइज्म, रीव्यूज एण्ड रिफ्लेक्शन्स (नयी दिल्ली, २०००), पृ० ८३
६३. वही, पृ० ३ विस्तार के लिए देखें सनातन धर्म और उसके उन्नायक (चण्डीगढ़, १९९९), पृ० १–३६
६४. सनातन धर्म और उसके उन्नायक (चण्डीगढ़, १९९९), पृ० १०–११
६५. श्री अरविन्द, 'अवर सनातन धर्म', 'धर्म'
६६. उद्धृत वासुदेव शरण अग्रवाल लेख, सनातन धर्म और उसके उन्नायक, पृ० ११
६७. वही, पृ० ११–१२
६८. वही देखें, लेख, डॉ० रमाकान्त अंगिरस्, 'आधुनिक सन्दर्भ में सनातन धर्म'
६९. सीताराम गोयल, परवर्सन ऑफ इण्डियाज़ पॉलिटिक्स पारलेंस (दिल्ली, १९८४), पृ० ५५, ५८–८०, देखें लेख 'हम अपने धर्म से भटक गए हैं', जनसत्ता, फरवरी १९८८, 'फॉर ए हिन्दू हिस्टरोग्राफी, आर्गनाइज़र', दीपावली अंक, १९८१
७०. डॉ०टी०एम्०एस० माधवन, मेटाफिजिक्स इन् हिन्दुइज्म (पटियाला, १९६९),पृ० १८
७१. डेविड फ्राउले, हिंदुइज्म: द इंटरनल ट्रेडीसन
७२. स्वामी विवेकानन्द के विचार (उद्धृत), एकनाथ राणाडे, राइजिंग कॉल टू हिन्दू नेशन (कोलकाता, १९६३) पृ ० ५
७३. श्री अरविन्द, उत्तरपाड़ा-भाषण (पुदुच्चेरी, १९८३ संस्करण)
७४. एच०वी० शेषाद्रि, 'राजनीति और राष्ट्र-जीवन के आधारभूत मूल्य', पांञ्चजन्य, १५ सितम्बर, १९८५
७५. डॉ० राधू चन्दर शास्त्री, 'हिन्दुत्व की मूल वैदिक परम्परा', पाञ्चजन्य, २२ सितम्बर, १९८५
७६. ३० मई, १९०९ को उत्तरपाड़ा में दिए गए प्रसिद्ध भाषण का अंश, सर्वप्रथम ०१ जून, १९०९ ई० को 'बंगाली ' (अंग्रेजी समाचार –पत्र)में प्रकाशित , पुनः १९ एवं २६ जून , १९०९ को 'कर्मयोगिन्' में प्रकाशित; द कम्पलीट वर्क्स ऑफ़ श्री अरविन्द, भाग ८, पृ० १२
७७. वही, पृ० १२
७८. (उद्धृत) जस्टिस डॉ. एम० रामा ज्वायस, प्रदीप जैन बनाम भारत सरकार (एआईआर १९८४, सुप्रीम कोर्ट,१४२०), देखें श्याम खोसला व बी०के० कुथियाल, पूर्वोद्धृत, पृ० ३७; उद्धृत सुप्रीम कोर्ट का निर्णय १९९६, देखें जस्टिस डॉ० एम्० रामा० ज्वायस, हिन्दुत्व : आवर कल्चरल नेशनलिज़्म एण्ड वैल्यूज़ ऑफ लाइफ (दिल्ली, १९९६) पृ० १२—१३
७९. (उद्धृत) जस्टिस डॉ० एम्०रामा ज्वायस, श्याम खोसला एवं कुथियाल, पूर्वोद्धृत, पृ० ३७
८०. वसुमिट डी० कुन्हा, स्प्रीचुअल वेल्यूज इन ऐवरी डे लाइफ' , द टाइम्स ऑफ इण्डिया, ९ फरवरी, २००४
८१. (उद्धृत) कृष्णन पिल्लै, 'आवर लाइफ ब्लड इज़ स्प्रीचुएलिटी', द टाइम्स ऑफ इण्डिया, २०जुलाई, १९९७
८२. एच०वी० शेषाद्रि, 'राजनीति और राष्ट्रीय जीवन के आधारभूत मूल' पाञ्चजन्य, १५ सितम्बर, १९८५
८३. देखें, संपादकीय, द टाइम्स ऑफ इण्डिया, १४ अगस्त, २००१
८४. देखें, रिपोर्ट ऑफ द संस्कृत कमीशन: १९५६- १९५७ (भारत सरकार द्वारा स्थापित) (नयी दिल्ली,

१९५७), अध्याय चार
८५. वही
८६. वही
८७. रिपार्ट ऑफ द संस्कृत कमीशन: १९५६-१९५७, पृ० ७१
८८. वही, पृ० ७३
८९. वही, पृ० ७४
९०. एस० सी० मित्तल, 'मैकाले की शिक्षा-नीति: एक विश्लेषण, भारतीय-शिक्षा, परम्परा एवं वर्तमान सन्दर्भ, पृ० १९
९१. वही, पृ० १९
९२. एन्० सी० ई० आर० टी०, संस्कृत : द वोयेस ऑफ इण्डियाज़ एण्ड विज्डम (नयी दिल्ली, २००१),पृ०१
९३. संस्कृत: 'द वोयेस ऑफ इण्डियाज़ एण्ड विज्डम
९४. वही
९५. वही, पृ० १,९
९६. वही, पृ० २
९७. वही, पृ० २,९,३४
९८. संस्कृत: द वॉयस ऑफ इण्डियाज़ एण्ड विज्डम, पृ० ३
९९. वही, पृ० ४
१००. वही, पृ०४
१०१. उच्चतम न्यायालय का निर्णय, रिपोर्ट १९९४ (६) सेक्शन ५७९, पैरा ११) देखें, जस्टिस एम० रामा० ज्वायस, हिन्दुत्व: आवर कल्चरल नेशनलिज़्म एण्ड वेल्यूज़ ऑफ लाईफ (दिल्ली, १९९६), पृ० ६; विस्तार के लिए द वोयेस ऑफ इण्डियन सोल एण्ड विज्डम पृ० ३०-३६.

अध्यक्ष
आखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना,
६/१२७७ ए, माधव नगर,
सहारनपुर, उ०प्र० — २७३००८

कुलुई की कृषि व्यायसायिक शब्दावली

मौलू राम ठाकुर

हिमाचल प्रदेश के अन्य ज़िलों की तरह कुल्लू ज़िला के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। यहां के लोग परिश्रमी और हष्ट-पुष्ट हैं और खेती-बाड़ी का काम बड़े शौक से करते हैं। यद्यपि पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण यहां के खेत मैदानों की भान्ति बड़े-बड़े समतल नहीं है परन्तु यहां की भूमि अधिक उपजाऊ और ऋतु अधिक अनुकूल होने के कारण उपज अच्छी हो जाती है। यहां पहाड़ों की ढलानों पर छोटे-छोटे खेत होते हैं जो एक के ऊपर दूसरा सीढ़ियों की पैड़ियों की तरह दिखाई देते हैं। प्रत्येक खेत के अन्दर के किनारे को ***ढेक*** तथा बाहर के किनारे को ***बेउड़*** कहते हैं। बाहर के किनारे पर ज़मीन न होने के कारण कुछ बैल गिरने के भय से आगे नहीं चलते, तब हाळी (हलवाहा) ***बेउड़-बेउड़*** कहता हुआ उन्हें हांकता है और यदि बैल किसी कारण अंदर की ओर न जाएं तो वह उन्हें ***ढेक -ढेक*** अथवा ***ढेका -ढेका*** कहते हुए हांकता है ताकि बैल यथा-स्थिति बाहर के किनारे अथवा अंदर के किनारे की ओर चलते जाएं। उल्लेखनीय है कि इस तरह बेउड़ और ढेक की यह स्थिति मात्र उस खेत विशेष के बारे में है, अन्यथा निचले खेत का ढेक ऊपर के खेत की बेउड़ ही तो होती है, अर्थात ऊपर के खेत की बेउड़ और निचले खेत का ढेक एक ही तो है। ऐसी स्थिति में जब कभी अधिक वर्षा के कारण ढेक गिर जाते हैं तो रिवाज-ए-आम में यह उपबन्ध है कि नीचे के खेत का मालिक यह नहीं कह सकता कि ऊपर के खेत का मलबा है और उससे मेरी फसल भी खराब हुई है इसलिए ऊपर के खेत का मालिक ही इसे ठीक करेगा, वरन् उसके लिए यह जरूरी है कि पहले वह मलवा को साफ करे। वह पत्थरों का ढेर अलग लगा देगा और मिट्टी का अलग। पत्थर का एक टुकड़ा भी न वह अपने लिए उपयोग कर सकता है न उसे बाहर फेंक सकता है। वह ढेक के लिए मियाद (नींव) भी खोदेगा। तब ऊपर के खेत का मालिक उस ढेक का पुराने ढेक की तरह ही निर्माण करेगा। ढेक के निर्माण के लिए वह पहले के पत्थरों और मिट्टी का प्रयोग करेगा। यदि पत्थरों की कमी हो तो उस कमी की पूर्ति वह स्वयं करेगा।

राजस्व अभिलेखों में दो प्रकार के ढेक मान्यता प्राप्त है— गैर मुमकिन (नोन-रिक्लेमेबल) ढेक तथा मुमकिन अथवा सामान्य ढेक (रिक्लेमेबल)। ''गैर मुमकिन ढेक'' से अभिप्राय ऐसे ढेक से है जो काशत के योग्य न हो अथवा जिसपर अन्न उगाना या काशत करना मुमकिन (सम्भव) न हो। ऐसी स्थिति में उस सारे खेत की, उसके अन्दर के ढेकों के साथ पैमाइश की जाती है। कुल रकबे में से ढेक के रकबा को अलग दिखा कर उस पर किसी तरह का कर या लगान निर्धारित नहीं किया जाता। शेष रकबे पर लगान निर्धारित कर अलग दिखाना आवश्यक है। सामान्य ढेक की स्थिति साधारण खेतों के समान रहती है, क्योंकि या तो वे शीघ्र काशत के अधीन आने वाले होते हैं या

फिर नगण्य होते हैं।

साहित्यिक और भाषा वैज्ञानिक तत्त्व

स्थानीय शब्दों पर कुछ और प्रकाश डालना अधिक उचित रहेगा :—

'ढेक' शब्द संस्कृत 'स्थायिक' से व्युत्पन्न हुआ है— स्था>था>ठा> ढा +यि= ढे+क= ढेक, सं पु० (अ०); स्थायिक (टिकने वाला, बना रहने वाला अर्थात् ढेक)

बेउड़— बाह्य> बाहर> बाहड> बेउड़, सं.स्त्री०

गैर मुमकिन= अरबी भाषा का शब्द; उपसर्ग "गैर" (बिना, अन्य, भिन्न) + मुमकिन (योग्य,कृष्य)= बिना-योग्य, विना कृष्य= गैर मुमकिन (वि०) ढेक= विना-योग्य अथवा विना—कृष्य ढेक। राजस्व अभिलेखों में "ढेक" के स्थान पर अन्य शब्द भी हैं, यथा-गैर मुमकिन पत्थर/बंजर/बंजर कदीम आदि।

रिवाज -ए -आम = अरबी भाषा का संश्लिष्ट शब्द, आम (सभी का) रिवाज अर्थात् सार्वजनिक रिवाज। समाज द्वारा व्यवहार के मान्यता-प्राप्त तौर तरीकों को रिवाज कहते हैं और जब यही रिवाज किसी विधि-विधान द्वारा अधिकृत हो जाए तो वे रिवाज-ए-आम अथवा Customary Law कहलाते हैं। इन शब्दों ने कुछ लोकोक्तियों को जन्म दिया है, अथवा साहित्यिक रूप धारण किया है, यथा:

जुणीए नी खोणे ढेक ता बेउड़ ,
तिन्हा की जाणना औध की देहुड़ ।

अर्थात् जो नहीं खोदते ढेक और बेउड़ को, वे नहीं जानते आधा और डेढ़ के अंतर को। यहां उन लोगों की स्थिति का उल्लेख है जो किनारों को बिना खोदे और बीज डाले छोड़ देते हैं। इस लोकोक्ति द्वारा आलसियों और काम से जी चुराने वालों पर कटाक्ष किया गया है कि ऐसे लोगों के लिए अन्न-धन कि कोई तमीज़ नहीं है। एक अन्य कहावत द्वारा ऐसे ज़मीनदारों के प्रति भी समाज की सहानुभूति नहीं दिखाई देती है जिन्हें अपने खेत में खोद-खुदाई और नमी आदि की ज़रूरत का ज्ञान नहीं होता। कहावत यह बताती है कि :

बेउड़ ढेक नी बात्र भाळी,
फसल तुध किहां सम्भाळी।

यह भी उल्लेखनीय है कि अनपढ़ समाज में साहित्यिक मानदण्डों का कोई ज्ञान नहीं होता। उन की रचनाओं में साहित्यिक मानदण्डों को ढूंढना न्यायसंगत नहीं है। फिर भी अनपढ़ समाज में इस तरह के नियमों का समा जाना उनकी योग्यता का एक प्रमाण है। ऊपर लिखित दोनों दोहों में छन्द विधान मात्र उनके स्वत: स्वभाव के कारण हैं। इनमें प्रथम दोहे की पंक्तियों में १२-१२ वर्ण और दूसरे में १०-१० वर्ण हैं और इसलिए ये दोनों वार्णिक छन्दों के उल्लेखनीय उदाहरण हैं।

कुलुई में सृष्टि रचना से सम्बन्धित एक गाथा में मानव को उत्पन्न करने के सम्बन्ध में कहते है कि ईश्वर ने सोने, चांदी, लोहा इत्यादि धातुओं से मानव प्रतिमाएं बनाई, परन्तु इनमें से कोई भी न तो चल पायीं और न ही पुकारने पर जबाब दे पायीं। अन्त में ईश्वर ने अपने शरीर की मैल से एक प्रतिमा बनाई और पुकारने पर उसने जवाब दिया 'हूईई'। मनुष्य के इस अशिष्ट जवाब से ईश्वर

क्रोधित हुए और श्राप दिया ''***ढेका मौथड़, बेउड़ी धूंई''।*** अर्थात उसे सुनिश्चित आयु नहीं मिली और जो मिली वह भी बहुत कम मिली। यदि मनुष्य ने 'हां, जी' उत्तर दिया होता तो उसे वरदान मिलता ''लख वर्ष जी''।

कुल्लू में ज्येष्ठ महीने तक जौ की फसल पक जाती है और लोग नये वर्ष की नयी फसल के ***सतु*** बना कर पहले अपने देवी देवता को चढ़ाते हैं और फिर आगळु देई रस्म द्वारा शुभकामनाएं करते हुए स्वयं खाते हैं। ***सतु*** अथवा सौतू शब्द ''सक्तु'' का तद्भव रूप है। वेदों में अनेकत्र इसके संदर्भ आते हैं। ऋ० १०.८६.१ में सक्तु शब्द जौ के भूने हुए दलिया के रूप में आया है तथा ऋ० १०.७१.२ और १०.९.२ में इसे तितऊ अर्थात किसी छाननी से छाने जाने का संदर्भ आता है। वैदिक कालीन ये संदर्भ हिमाचल की वर्तमान स्थितियों से बहुत भिन्न नहीं है। कुल्लू क्षेत्र में नए वर्ष की पहली फसल जौ के पक जाने पर लोग अपने-अपने खेतों से जौ काट कर, दानों को साफ कर लेते हैं। दानों को आग से तवे पर भून कर पिसाई की जाती है और यह भूने जौ का आटा ही सतु खाने के लिए तैयार हो जाता है। उसे आग पर पकाने की आवश्यकता नहीं होती है।

आगळु देई, आगळु खाई : कुलुई समाज में शुभकामनाएं देने की एक विशिष्ट परम्परा है। आगळु से अभिप्राय अगले (अर्थात आने वाले) वर्ष से है और 'दे' तथा 'खा' मूल धातुओं में 'ई' प्रत्यय के संयोग से आज्ञावाचक वैयाकरणिक रूप बनता है; तब इनका अर्थ होगा— देई ''दे देना'', खाई ''खा लेना''। नए वर्ष की पहली नयी फसल जौ के सतु पहली बार खाते समय परिवार के सदस्य की इच्छा रहती है कि सभी सदस्य इकट्ठा खाना खा लें ताकि पूजा की रस्म भी एक साथ सम्पन्न हो जाए। तब कोई एक सदस्य सतु का ग्रास हाथ में ले कर ज्योंही मुंह में डालेगा तभी वह यह भी कहता है, ''आगळु देई''; इस पर अन्य सभी सदस्य कहेंगे, ''आगळु खाई''। वास्तव में कुल्लू का समाज पूर्णतया कृषक है और इस तरह बीज बोने से लेकर फसल भंडारण तक अनेक प्रकार के संस्कार निभाने पड़ते हैं। वर्तमान स्थिति में परिवार के सदस्य भगवान/देवता को हाजिर-नाजिर जान कर प्रार्थना कर रहे हैं कि हे प्रभु जिस प्रकार हमने वर्तमान फसल को बोया, निडाई की, काटा भंडारण किया और आज हम सब मिल-बैठ कर सतु के रूप में खा रहे हैं, उसी प्रकार हम अगले वर्ष भी मिल-बैठ कर खाएं।

हाछा और बगड़ा : कुलुई समाज में प्रत्येक गांव के सभी परिवारों के बीच तथा प्रति परिवार के अपने रिशतेदारों के बीच शुभ अथवा अशुभ आयोजनों के अवसर पर अतिरिक्त खर्च की प्रतिपूर्ति हेतु अन्न देने की परम्परा है। इस प्रयोजन से अन्नों की दो श्रेणियां मानी गई हैं — हाछा और बगड़ा। ***हाछा*** शब्द सं० स्वच्छ का तद्भव रूप (श>स>ह के नियम से) विशेषण है। इसमें चावल, गेहूँ और सतु शामिल है। ये पवित्र, साफ और निर्मल अन्न माने जाते हैं। केवल इन्हीं को खाने से पहले आगळु देई की रस्म निभाई जाती है। अन्य प्रकार के सभी अनाज मक्की आदि बगड़ा अन्न माने जाते हैं। ***बगड़ा/बौगड़ा*** देसी (पहाड़ी) भाषा का शब्द है तथा ''पहाड़ी-हिन्दी शब्दकोश'' में इसी अर्थ में अर्थात् चावल और गेहूँ का छोड़ कर अन्य अनाज दिखाया गया है। प्राय: साधारण रिश्तेदारी अथवा गांवों के बीच खर्च में सहयोग चार पथे बगड़ा और एक पथा हाछा के रूप में होता

है। इसे ***बर्तन*** कहते हैं अथवा विवाह, गृह प्रवेश आदि शुभ कार्य के लिए ऐसे लेन-देन को ***तलाई*** तथा क्रिया कर्म आदि अशुभ अवसरों में इसे ***बर्तन*** कहा जाता है।

जेठ के महीने तक अभी जमीन का काम अधिक नहीं होता। जौ की फसल जो पक जाती है, उसे काट कर लोग प्राय: सतु तैयार कर लेते है। भोजन रूप में सतु के लिए कोई समय और कष्ट उठाना नहीं पड़ता। सतु का आटा किसी बर्तन में निकाला, उसमें अपनी इच्छानुसार नमक या मीठा डाल दिया और मजे के साथ बैठ कर खा लिया। जेठ महीने की मौज-मस्ती को लोग इस तरह याद करते हैं —

आऊ महीना जेठ,
चार मठिंगळे सतु रे खाणे,
कोम पिटला, लेट।।

'आऊ' शब्द आना क्रिया का भूतकालिलक कृदंत रूप है और आया अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ***'मठिंगळा'*** मठिंगला शब्द की व्युत्पति 'मुठी भर गोला' बनती है अर्थात् मुट्ठी भी सतु का गोला। डायक ने इसका अर्थ केक किया है (डायक १८९६,७७) जिस का अर्थ पिंड अथवा पिंडिका है जो बहुत सही नहीं लगता क्योंकि मठिंगळा का रूपाकार टोपी की तरह चपटा-गोल नहीं होता, वरन् सेब/आम कि तरह गोल होता है। अगला महीना आषाढ़ महीना आषाढ़ बड़े काम का महीना है और इस महीने में कोई किसी को लेटे रहने अथवा सोने की कोई सलाह नहीं देता—

आऊ महीना शाढ़
चार मठिंगळे सतु रे मार,
कोम कमोणा दिहाड़।

रूहणी : जिनके कुछेक खेतों को ***कुहलों*** के द्वारा नदी नालों से सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध हो, वे अपने-अपने रोपों (सिंचाई वाले धान के खेतों) के लिए अपेक्षित छोटे-छोटे ***रियाटों*** में धान बीज देते हैं। आषाढ़ महीने के मध्य में जब ***ओरियों*** (धान की पनीरी) की लंबाई लगभग एक ***बेंथ*** (बालिश्त, लगभग नौ इंच) हो जाए, ताकि वे एक हाथ के ***पेइंद्ल*** में थामी जा सके, तो रियाटे में पानी लगा कर एक दो दिन उसमें पानी खड़ा रखा जाता है और जब रियाटे की मिट्टी इतनी गीली हो जाए कि पनीरियों को आसानी के साथ उखाड़ा जा सके तो घर की स्त्रियां उन्हें जड़ से उखाड़ कर ***ओर्लुओं*** के रूप में पानी में ही रख देती हैं। उधर जमीनदार अपने रोपों को पहले खाली हल चलाता है, बड़ी-बड़ी ***घढिनियों*** (मिट्टी के ढेलों) को ***टिप्पणों*** द्वारा तोड़ कर पहले से ही बनाई हुई ***रिउंड*** (मेड़) को ताजा मिट्टी-पत्थर लगा कर और ऊंचा कर देता है। तब बैल के कंधों से हल को उतार कर एक अन्य यन्त्र ***दंदाल*** जोता जाता है। दंदाल में हल की तरह लोहे का ***लुहाल*** नहीं होता उसमें लकड़ी के ही लगभग २०-२५ सैंटीमीटर लंबे ६-८ ***शौले*** (दांत) लगे होते हैं। इसका काम मिट्टी को खोदना नहीं है वरन् मिट्टी और पानी को इस तरह से मिलाना है कि दलदल सा बन जाए। जब पानी रिउंड के सिरे तक भर जाए तो रोपे को पचाशणा (पत्र + आसन करना) शुरू कर देते हैं। इसके लिए दंदाल में जोते बैलों को खेत में पानी के बीच लगातार गोल घूमना पड़ता है।

दंदाल में लगे लकड़ी के तीखे नोकदार शौले पानी की तह में नीची बैठी गीली मिट्टी को उखाड़ कर पानी के साथ मिला देते हैं। यह क्रिया तब तक चलाई जाती है जब तक कि पानी और मिट्टी का घोल एक दलदल और खेत समतल न बन जाए। इसी बीच ज़मीनदार द्वारा पिछली शाम को अपने गांव और कुछ रिश्तेदारों को आज के दिन रूहणी काम के लिए ***जुआर*** (सहकार कार्य की परम्परा)लगायी है। और जिन-जिन को उसने ***जुआरू*** (सहकार कर्मी)के रूप में आंमत्रित किया है, उन्होंने आना शुरू किया है। कुछेक उसके घर जा कर जो कुछ साधारण भोजन बना है उसे खा कर रोपा में काम करने के लिए पहुंच गए हैं, कुछ अन्य अपने घर से ही खाना खा कर आए हैं। उसके अतिरिक्त और भी हैं जिन्होंने इसी प्रकार रूहणी के लिए जुआर लगाया है और सभी ओर खासा जमघट एकत्र हुआ है। महिलाएं एक हाथ में ओर्लुओं का एक पेइंदल भाग ले कर दूसरे हाथ से ३-४ ओरियां ले कर उक्त पानी और मिट्टी के घोल के बीच में से नीचे समतल भूमि में रोपित करती हैं। पुरुष जुआरू हल चलाने, रोपा पचाशणे, पानी की व्यवस्था करने का कार्य करते हैं। क्योंकि सारा काम पानी और मिट्टी के घोल के बीच कर रहे होते हैं, इस लिए सभी ने अपने कपड़े पाजामें, सलवारे, पट्टू के दामन ऊपर तक कसे होते हैं। कुल्लू भर में रूहणी के ये दिन एक ही साथ काम और मनोरंजन के सबसे महत्त्वपूर्ण दिन होते हैं। खेतों में एक तरह का मेला लगता है। घुटनों तक पानी और मिट्टी के बीच डूबे लोग धान की पनीरियां रोपते हैं और साथ ही साथ पुरुष-महिलाएं एक दूसरे पर पानी और मिट्टी के घोल दलदल को फेंकते हुए खूब मनोरंजन जुटाते हैं। असल मजा तब शुरू होता है जब घर से तैयार कर के ***दपौहरी*** (दोपहर का भोजन) लाई जाती है। ऐसे खुले वक्त में इस वनविहार का आनन्द ही और है। कुल्लू के प्रत्येक क्षेत्र की भोजन कला की विशिष्टता और विविधता है। यहां लग नाला के भोजन का विवेचन हो रहा है। दोपहर के भोजन के लिए तीन प्रकार के खाने लाए जाते हैं– ***रेढ़ू, सतु और सूर***। रेढ़ू के लिए पहले अपेक्षित मात्रा में चावल पकाए जाते है; पकने पर उसमें आवश्यक मात्रा में लस्सी डाल दी जाती है और फिर कई प्रकार के मसालों (स्थानीय मसालों सहित) का तड़का लगाने के बाद धीमी आंच में पकाया जाता है जब तक कि वह अच्छा गाढ़ा सूप न बन जाए। सतु के बड़े-बड़े मठिंगळों के अतिरिक्त उसे आटा रूप में भी लाया जाता है और साथ में ***सूरा दा घड़ोलू*** (सूर से सम्बन्धित जानकारी के लिए देखें इन पंक्तियों के लेखक की पुस्तक ''पहाड़ी संस्कृति मंजूषा'' में पृ० ५२-६० पर लेख ''वैदिक सोमरस, सुरा और पहाड़ी सूर'')। रोपे में पहुंचने पर गृहिणी सब से पहले सेरी (फसल स्थान के) देवता ***थान, थनपल या ओड़ी*** जो भी निकटतंम हो उसे उक्त तीनों भोज्य पदार्थों को चढ़ा आती है। खाना, पीना, दलदल में खेल-कूद, नाच-गाना आदि पहले से भी अधिक गति पकड़ लेते हैं। परन्तु काम में किसी तरह की बाधा या रूकावट डालने की इजाजत नहीं दी जाती। जिला कांगड़ा के प्रथम बंदोबस्त अधिकारी जे० बी० लायल अपनी बंदोबस्त रिपोर्ट दिनांक ३० जुलाई १८७२ के पैराग्राफ १०६ पर लिखते हैं कि "The day's work often ends with a tremendous romp, in which everybody throws mud at his neighbours, or tries to give him or her a roll in it". अर्थात् दिन भर का यह काम प्राय: ऐसे भयानक खेल के साथ समाप्त हो जाता है जिसमें हर एक व्यक्ति अपने साथ के व्यक्ति पर चाहे

वह पुरुष हो या स्त्री, खूब कीचड़ फेंकता है या उसे कीचड़ पर घसीटने के प्रयत्न करता है।

वास्तव में रूहणी का काम बड़ा कष्टदायक और श्रमसाध्य होता है। इस लिये इसमें खेल और नाच गाने के माध्यम से मनोरंजन लाया जाता है। रूहणी के अवसर पर अत्यन्त मधुर और सुरीले गीत गाए जाते है। अनेक गीतों में से निम्नलिखित गीत सर्वाधिक लोकप्रिय है :

स्त्रियां — हांडे ओबूआ
पुरुष — ओबे हो
स्त्रियां — छेता लागी औज रूहणी म्हारे
पु० — रूहणी म्हारे, रूहणी म्हारे
स्त्रि० — हांड़े ओबुआ ओबे ओ
पु० — तू भी लोड़ी आई म्हारे जुआरे
स्त्रि० — म्हारे जुआरे, म्हारे जुआरे
पु० — शोभली झूरी, पाहुणी म्हारे
स्त्रि० — हाड़े ओबुआ ओबे ओ
पु० — रूहणी लांदे डूबे दिहाड़े
स्त्रि० — जेठा—शाढ़ा रे, लोमे दिहाड़े
पु० — हाईए ओबिए ओबे ओ
इन्हा छेता पौज़ले, गौरी चुहारे
खीसे भौरी आणी, गौरी चुहारे
स्त्रि० — हाड़े ओबुआ ओबे ओ
तेरे रोपे रूहणी होरी तुआरे
औज के बिछड़े, होरी तुआरे
पु० — हाईए ओबीए ओबे हो
छेता निभी एबे, रूहणी सारे
छेता रे पूजे दूजे कनारे
स्त्रि०/पु०— हाड़े ओबुआ, हाईए ओबिए
घौरा पुजणा, कुणी नुहारे
पुजणा होला, कुणी नुहारे।

इन दिनों का तौन्दी(गर्मी) का मौसम मिरगसताई के साथ समाप्त होता है। यों तो यह महीना भर चलता है, परन्तु इसके अन्तिम दिन बड़े महत्त्वपूर्ण होते हैं। ज्येष्ठ मास के अन्तिम पन्द्रह दिनों को जेठी (ज्येष्ठ) मिरगसताई तथा आषाढ़ के प्रथम अर्ध–मास को कोन्ही (कनिष्ठ) मिरगसताई या तीर कहते हैं। किसानों के लिए ये दिन बड़े महत्त्वपूर्ण होते हैं। एक ओर इन दिनों रबी फसल काटी जा रही होती है और दूसरी ओर खरीफ की फसल बिजाई का भी यही समय होता है। इसी लिए किसान बहुत व्यस्त रहता है। बेकार बैठे किसान को कुछ इस तरह लताड़ा जाता है :

सोला तप्पै मिरगसताई, सोला तप्पै तीर,
भूंदुआ हलबाहिया, होर नी जा झीफ -ए धरीड़

इस तरह उसे और नहीं तो कम से कम निडाई में खड़ पतबार साफ करने की सलाह दी जाती है। इन दिनों वर्षा जरूर आती है, परन्तु बारिश हो या न हो मिरगसताई के ये दिन सभी दिशाओं में किसानों के लिए बहुत अनुकूल और लाभदायक होते हैं। यही कारण है कि बड़े-बूढ़ों का यह कहना है—

बैठी मिरगसताई,
शुकी सिन्नी देओ रलाई।

मिरगसताई के अन्तिम दिन कुल्लू क्षेत्र में सर्वाधिक गरमी के दिन होते हैं, यहां तक कि सामान्यतः पशु-पक्षी भी मुंह खोले हांफते दिखाई देते हैं। इसी लिए मिरगसताई से अभिप्राय मृग+सताई से है अर्थात् ऐसी गरमी या धूप जो मृग जैसे पशु को भी सताए। अनेकत्र मिरगसताई के स्थान पर मिरगसदाई शब्द का प्रयोग भी मिलता है। वहां 'सदाई' शब्द शादणा/सदणा (बुलाना) क्रिया का भाववाचक संज्ञा रूप है। ऐसे क्षेत्रों में यह लोक विश्वास प्रचलित है कि ये दिन मृगों के सह-वास के दिन होते है। मृगी एक स्थान पर बैठ जाती है और अपनी आसक्त वाणी से मृग को शादती/सदती (बुलाती) है, इस लिए इस समय को मिरगसदाई कहते हैं।

भाषावैज्ञानिक एवम् साहित्यिक विश्लेषण

उपर्युक्त कुलुई शब्दों पर कुछ विवेचन करना आवश्यक लगता है।

रोपा : ऊपर कथित रूहणी का यह सारा कार्य समतल खेतों में ही होता है जिन के किनारे चारों ओर से उभरे हुए हों ताकि उनमें पानी खड़ा रह सके। ऐसे खेतों को ही रोपा कहते हैं। सं० शब्द रोप या रोपण से ही इस की उत्पत्ति समझी जा सकती है। कुछ विद्वानों ने इसे निम्न रूप से परिभाषित किया है — धान को उगाना, उगाने का काम, पहड़ी नदी नालों से सिंचित समतल खेती, सिचित धान का खेत, सं० रोप्य 'उगाना, बीज उगाना। धान बोने हेतु सिंचाई योग्य भूमि; ऐसी भूमि जिसमें सिंचाई द्वारा धान बोया जाता है। परन्तु यह सब कुछ कह लेने के बाद भी रोपा का असल कार्य अभी पूरा नहीं हुआ है। वास्तव में भू-राजस्व के निर्धारण के लिए खेतों को मूल रूप से दो प्रमुख श्रेणियों में बांटा जाना बहुत जरूरी समझा गया है — सिंचित और असिंचित। कुल्लू भर में सिंचाई के कोई विशेष साधन नहीं है। राजाओं के समय से ले कर कुछ कुहलें खुदवाई गई है। इन कुहलों से सिंचित भूमि को रोपा कहते हैं और इन्हें पुनः तीन भागों में विभक्त किया गया है। कुहलों के निकट के खेत जहां पानी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो और जहां धान के अतिरिक्त दूसरी फसल भी समय पर अच्छी उपज देती हो वे रोपा अव्वल (प्रथम श्रेणी) कहलाते हैं। जहां पानी कम मात्रा में प्राप्त हो और उपज भी कम होती हो उसे रोपा दोम (दूसरी श्रेणी) कहते हैं। जो खेत कुहल से बहुत दूर हों, पानी की कमी रहती हो, वे रोपा सोम (तीसरी श्रेणी) कहलाते हैं। एक रोपा के लिए तीन अपेक्षिताएं जरूरी हैं— प्रथम खेत चारों ओर से रिउंड (रोकें) लगा समतल होना चाहिए ताकि पानी खड़ा रह सके; दूसरी, उसमें कुहल के पानी के द्वारा सिंचाई की व्यवस्था हो; तीसरी, उसमें धान

प्रतिरोपण द्वारा उगाया गया हो। अन्यथा हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सारे कुल्लू क्षेत्र में कुहल द्वारा सिंचाई के बिना ही, अन्य फसलों की तरह, धान भी खूब बीजा जाता है और उस धान को बाथली धान कहते है। अन्तर केवल इतना है कि इसके दाने बारीक और छोटे होते हैं, छिलका अधिक मोटा होता है और उपज भी कम होती है।

बाथल : बाथल शब्द की व्युत्पति बा+स्थल के संयोग से हुई है। संस्कृत 'स्थल' का मूल अर्थ सूखी और सखत भूमि होता है। 'बा' उपसर्ग प्रायः मूल शब्द के अर्थ को बल प्रदान करता है। इस तरह इसके साथ 'बा' के संयोग से 'स्' वर्ण का लोप हो जाता है तथा संयुक्त अक्षर 'बाथल' का अर्थ ऐसी भूमि है जिस भूमि को सिंचाई की सुविधा उपलब्ध न हो और इसलिए सूखी और सखत हो। वास्तव में भूराजस्व निर्धारण के लिए निश्चित की गई एक किस्म बाथल है जो असिंचित होती है। भूराजस्व निर्धारण में सुविधा की दृष्टि में कुल्लू भर की बाथल भूमि को चार श्रेणियों में बांटा गया है। यह विभाजन राजाओं के समय से ही चला आ रहा था। गांवों के निकट के खेत जिन का प्रायः हर समय गोबर डाला जाता है, अधिक उपजाऊ होते हैं; वर्ष में दो फसलें इन में हो जाया करती हैं, इस लिए इन्हें बाथल अव्वल (प्रथम श्रेणी) कहा गया है। बाथल दोम (दूसरी श्रेणी) की भूमि में भी यद्यपि वर्ष में दो फसलें हुआ करती है परन्तु उन में उपज कम होती है क्योंकि या तो भूमि अधिक पथरीली है अथवा घर से दूर होने के कारण गोबर कम मिलता है। बाथल सोम (तीसरी श्रेणी) की भूमि में वर्ष में केवल एक ही फसल होती है क्योंकि या तो ऐसे क्षेत्रों में पत्थर, झाड़ियां और ढेक आदि अधिक होते हैं अथवा ***शिल्हा*** (जहां धूप कम आती है) क्षेत्र होता है। बाथल चहारम (चौथी श्रेणी) की भूमि गांवों से बहुत दूर पहाड़ों के ऊपर होती है और फसल प्रायः बंदरों द्वारा उजाड़ी जाती रहती है। यह भूमि ***कुटला*** नाम से जानी जाती है और देश की आजादी के बाद क्रान्ति आने पर कुटले प्रायः खाली पड़े रहे हैं, परन्तु जमीनदारों के सौभाग्य से यहां दियार, कायल रई आदि के पेड़ लगे हैं जो उनकी आय के साधन हैं।

कुहल : सं. स्त्री., सं० कुल्य का तद्भव रूप, छोटी कच्ची नहर, पानी की नाली। जिन पहाड़ी लोगों का सारा जीवन मात्र वर्षा के पानी पर निर्भर करता है उनके लिए हर वह शक्ति देवी-देवता है जो उन्हें पानी उपलब्ध कराए। आदिकाल से राजदरवारों की महिलाओं ने अपने जीवन का बलिदान करके प्यासी जनता को पानी दिलाया है। चंबा की सुई रानी, कांगड़ा में रूल्हा की ठकुरानी, बिलासपुर की रूक्मणी देई, लाहुल की रूपी रानी, वे महान आत्माएं हैं जिन्होंने जीते-जी अपने-आप को दीवारों में चिनवा कर जनता को पानी सुनिश्चित कराया है। कृतज्ञ लोग आज भी उनके उपकार की गाथा करते हैं —

सुकरात कुड़ियो चिड़ियों, सुकरात राजे रे बेढ़े हो।
ठण्डा पाणी किहां पीणा हो, तेरी हाखी हेरी-हेरी जीणा हो।।

तथा लाहुली समाज गा उठता है—

ए मेणी बाता देंदा जे चूचू बारे नीसे राखी जे।
ए मेणी याणा बालक आयेला मेणी ए चूचू पीयेला।।

उक्त विवेचन से कुहलों की अनिवार्यता और रोपों के महत्त्व को आंका जा सकता है। इसी के आधार पर राजस्व में कमी-बेशी भी देखी जा सकती है।

ओरी : ओरी शब्द सं. औरस का तद्भव रूप है। संस्कृत में ओरस शब्द का अर्थ विवाहित पत्नी से उत्पन्न पुत्र हैं। पहाड़ी भाषा में औरस शब्द जब ओरी बना तो अर्थादेश के कारण इसका अर्थ ऐसा पौधा है जिसे एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह रोपा जा सकता है। यह संज्ञा शब्द स्त्रीलिंग है।

ओर्लु : ओरी शब्द में 'लु' प्रत्यय लगा देने से ओर्लु शब्द बन जाता है। इसका अर्थ है 'ओरियों' का गट्ठा। उकारान्त पुंल्लिग शब्द होने के कारण इसका बहुवचन नहीं बनता है। कुलुई में उकारान्त पुंल्लिग शब्द दोनों वचनों में समान रहता है।

रियाटा : रियाटा शब्द की व्युत्पति ओरी तथा वाटिका दो शब्दों के मेल से निम्न रूप से सिद्ध होती है: ओरी+वाटिका >(ओ)री+वाटि(का)> री+वाटि= रीवाटि>रिवाटा= रियाटा। पहली स्थिति में प्रथम शब्द ओरी के 'ओ' तथा दूसरे शब्द वाटिका के अन्तिम 'का' के लोप से वर्ण– विपर्यय सिद्धान्त के अनुसार 'रिवाटि' शेष रहा। दूसरी स्थिति में 'री' को 'रि' और 'टि' को 'टा' में बदलने तथा य और व वर्णों के अन्तस्थ अथवा अर्ध-स्वर होने और वर्ण-व्यतिरेक के सिद्धान्त के अनुकूल रियाटा शब्द का आकलन हो गया है। इस तरह रियाटा शब्द ओरी और वाटिका दो शब्दों के सहयोग से उत्पन्न होने के कारण इसका मूल अर्थ हुआ ''ओरियों की बगिया'' तथा रियाटा के लिए यह अर्थ अत्यंत सटीक, उपयुक्त और उचित है, क्योंकि रियाटा एक छोटा खेत या खेत का टुकड़ा होता है जिसे उचित खाद, पानी और हल चला करके और अन्य सभी तरह से अनुकूल बना कर उसमें घना सा धान का स्वस्थ बीज बो देते हैं और जब इस की ओरी ७-८ इंच लंबी हो जाए तो उन्हें उखाड़ कर बड़े-बड़े रोपों में ऊपर कथित विवेचन अनुसार पुन: रोप देते हैं। इस तरह रियाटे की ओरियां दूसरी जगह बोने से अत्यंत अच्छे स्वस्थ चावल उपलब्ध होते हैं। उस के अतिरिक्त रियाटा शब्द साहित्यकारों के हाथों में बड़ा उपयोगी हथियार रहा है और उन्होंने अनेक रूपों में इसका प्रयोग किया है। पुरोहित चन्द्र शेखर ने इसे निम्नलिखित रूप में प्रयुक्त किया है–

सुख ता दुख सी भागे री खेला,
पौज़णा सो-ए ज़ो बाहू रियाटा।
सुखा रे दिहाड़े निभे हौसदे खेलदे,
दुखे रे दिहाड़े भी हिमती-ए काटा।

अर्थात् सुख और दु:ख भाग्य का खेल हैं, कर्मों का फल है। रियाटे (धान की पनीरियों का खेत) में जो बोया जाएगा, वही पैदा होता है। सुख के दिन हंसते खेलते व्यतीत हो जाते हैं, दु:खों के दिनों का सामना भी हिम्मत से होना चाहिए।

अध्यक्ष,
देवप्रस्थ साहित्य एवं कला संगम,
देवप्रस्थ भवन, ढालपुर, कुल्लू (हि०प्र०)

सृष्टि आख्यान

राजस्थान की ब्रह्माण्ड लावणी में सृष्टि रचना

डॉ० उमा शंकर जोशी

राजस्थान की लावणी लोक गाथाओं के अन्तर्गत ब्रह्माण्ड लावणी गाथा में सृष्टि रचना का प्रसंग उपलब्ध है। वास्तव में सृष्टि रचना के विषय में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों और देशों की परम्परा में जो कुछ मिलता है, उसका आधार वेद, पुराण और अन्य शास्त्रीय ग्रन्थ हैं। समय-समय पर मनीषियों ने इस कठिन विषय की जानकारी जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए क्षेत्रीय भाषा में गीतों, भजनों, कथाओं, गाथाओं की परम्परा का प्रचलन किया जो परम्परा किसी-न-किसी रूप में आज तक प्रचलित है।

वैदिक दर्शन के अनुसार जो पदार्थ जिस सूक्ष्म मूल कारण से उत्पन्न होता है, वह पुन: प्रलयकाल में अपने मूल कारण में विलीन हो जाता है। किसी पदार्थ का विनाश नहीं होता। आधुनिक विज्ञान भी इस तथ्य का समर्थन करता है।

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति परमेश्वर की इच्छा से होती है। इसके अतिरिक्त कोई अन्य कारण वेद शास्त्रों में उपलब्ध नहीं है। सृष्टि से पूर्व केवल नाद ब्रह्म प्रणव 'ॐ' का अस्तित्त्व था। ॐ परमात्मा का वाचक है। इसी नाद ब्रह्म प्रणव 'ॐ' से ही सत्व, रज, तम त्रिगुणमयी सृष्टि का निर्माण हुआ है।

आज के वैज्ञानिक मानते हैं कि ब्लैक होल में विस्फोट हुआ और फिर असंख्य सूर्य, आकाश, तारे, ग्रह, नक्षत्र आदि की अलग-अलग उत्पत्ति हुई। इस विस्फोट के होने से पहले कम्पन हुआ होगा और जहाँ कम्पन होता है, वहाँ शब्द अवश्य होता है। इस तरह कम्पन से प्रथम शब्द नाद ॐ प्रकट हुआ और सूर्य की उत्पत्ति ॐ नाद से ही हुई है।

पौराणिक आख्यानों के अनुसार भगवान विष्णु के नाभि-कमल से ब्रह्मा जी पैदा हुए और महाकाल शिव ने दोनों को बराबर का सहयोग प्रदान किया जिससे माया द्वारा सृष्टि की संरचना हुई।

राजस्थान की ब्रह्माण्ड लावणी लोक गाथा में सृष्टि रचना सम्बन्धी विचार वेद पुराणों में उपलब्ध वर्णन पर ही आधारित है, जो कि निम्नलिखित रूप में अभिव्यक्त किये जाते हैं—

मूल रूप	*हिन्दी रूपान्तर*
घण अन्धेरा माय	*घनघोर अन्धकार में*
ब्रह्म नाद ॐ क साग	*ब्रह्म नाद ॐकार के साथ*
ज्योति पुंज जोरस फाट्टो	*ज्योति पुंज जोर से फटा*
टुकड़ा घणा बण्यां	*उसके अनेक सघन टुकड़े बने*
पण सूरज सब क आग आगो	*सब से पहले सूरज पनपे*

ब्रह्म क बायं भाग स	*परब्रह्म के बायें भाग से*
प्रकटयो विष्णु	*विष्णु प्रकट हुए*
दायं स आदि शक्ति महाराणी	*दायें भाग से आदि शक्ति महामाया*
विष्णु की सुंडी स निकली	*विष्णु की नाभि से निकली*
गर्भ नाल पर कमल खिल्यो	*गर्भ नाल पर कमल खिला*
कमल स ब्रह्मण्ड मं	*कमल से ब्रह्माण्ड में*
पैली ब्रह्मा जल्म्यो	*सब से पहले ब्रह्मा जन्में*
ब्रह्म स ब्रह्मण्ड मं	*परब्रह्म के ब्रह्माण्ड में*
बणाण को काम	*सृजन का काम*
ब्रह्मा पायो	*ब्रह्मा को मिला*
पालणो विष्णु का हाथ आयो	*पालन का काम विष्णु के हाथ आया*
मारणो शिव जी न थमायो	*संहार का कार्य शिव ने सम्भाला*
ब्रह्मा इक्कीस इक्कीस लाख की	*ब्रह्मा ने २१-२१ लाख की*
चार जूण बणाई	*चार योनियां बनाई*
पहाड़ बणाया नदी बणाई	*पहाड़ बनाये, नदी बनाई*
पेड़ पौधा बेल उगाई	*पेड़-पौधे, बेल वनस्पति पैदा किए।*

राजस्थान के बाड़मेर आंचल में सृष्टि रचना सम्बन्धी लोक गाथा बाड़मेरी भाषा में निम्नलिखित रूप में प्रचलित है—

कांई कू थाने	*किस तरह से हुई*
ई दुनिया री बात	*यह संसार की रचना*
म्हानै तो व्है बस	*मुझे तो केवल*
इतरो इच ठाह	*इतना मालूम है*
ना जमी व्हैती थी	*तब न धरती थी*
ना आबो	*ना आकाश था*
ना कोई भाबु	*ना कोई माता थी*
ना कोई बाबो	*ना कोई पिता था*
ना व्हैता था	*ना ही होते थे*
ए साद अर तारा	*चांद और तारे*
कांई ठाह किण जगा	*किस स्थान और कौन सी जगह*
व्हैता था ए	*ये रहते थे।*
हुरजी र हाथै सारा	*सृजनहार के हाथ सब कुछ*
हैंग हमायोडा था	*समाया हुआ था*
एक परकाह पुंज में	*एक प्रकाश पुंज में*

बस जद ही परमात्मा होसियों
क मुं
जीवन बणार
सर्वव्यापी हो ज्याऊं
परकाह पुंज मैं
ॐकार को
हाको आयो परो
अर परकाह पुंज फटियो
जद हैंग जगा पखरियो
सोटा सोटा टुकड़ा बैया
अर ईश्वर
जोगमाया बणायी
परमगुरु रै
जोगमाया री
नव मिना री पीड़ा सूं
तीन पूत जनम्या
ब्रह्म विष्णु महेश
गुरु रै बुढ़ापा आयो
अर आप
हरग पधरबा लाग्या
तो महादेव जी न
गादी हूँपी री
महादेव जी
गाढ़ा होस पढ़िया
आकाश बणार
आप रै बळदिये रै
हिगड़ा माथै
जमीं धरी
बगर मिनख
हिंसार न हालै
तो मिनख बणाया
पांख -पखेरू
कीड़ा मकौरा बणाया

जब परमात्मा ने सोचा
कि मैं
जीवन की रचना कर के
सर्वव्यापी हो जाऊं
तब प्रकाश पुंज में
ॐकार का
शब्द नाद हुआ
और प्रकाश पुंज में विस्फोट हुआ
जब इधर-उधर बिखरा
छोटे-छोटे टुकड़ों में
और ईश्वर ने
योगमाया बणाई
परमगुरु के
योगमाया की
नौवें मास की प्रसव पीड़ा से
तीन पुत्र जन्मे
ब्रह्म विष्णु महेश
परमगुरु वृद्ध हुए
और स्वयं
स्वर्ग पधारने लगे
तब महादेव जी को
अपने सिंहासन का भार सौंपा
महादेव जी
गहरी सोच में पड़ गए
आकाश बनाया
अपने बैल के
सींग पर
धरती को थमाया
बिना मनुष्य के
संसार नहीं चल सकता
तो मनुष्य बनाया
पंखधारी पक्षी
कीड़े मकोड़े बनाए

मिनख नै हैगवाऊं
हजमदार बणाया
अर बण नै कियो
जद थै हांस कौला
हीदा हरग जान
परमात्माऊं मळोला
अर कूठ कियो
तो नरक मै जाऔला
धरम करोला
मन इच्छा फल पाओला
पाप कियो तो
लख चौरासी जाओला

मनुष्य को दूसरों से
समझदार बनाया
और उपदेश बाणी में उसे कहा
जब सत्य बचन का पालन करेगा
तो सीधा स्वर्ग जाएगा
परमात्मा में मिल जाएगा
यदि झूठ-मूठ करेगा
तो नरक में जाएगा
धर्म का पालन करेगा
तो मनोबांछित फल पाएगा
यदि पाप करेगा तो
चौरासी लाख यानियों के चक्र में चला जाएगा।

वास्तुविद्
मेन मार्किट, गौशाला रोड़,
चिड़ावा (राजस्थान)

स्मृति शेष

अकस्मात् छोड़ गए विनोद लखनपाल

चेतराम गर्ग

१२ जनवरी, २०१४ को विवेकानन्द सार्धशती वर्ष समारोह के अन्तिम कार्यक्रमों में हिमाचल प्रदेश भर में लगभग ३०० स्थानों पर कार्यक्रम हो रहे थे। मैं उस दिन कांगड़ा ज़िला के देहरा और रक्कड़ कार्यक्रम में सम्मिलित रहा और शाम को वापिस नेरी शोध संस्थान आ गया था। मुझे पहुंचे हुए अभी कोई आधा घंटा हुआ था कि ऊना से डॉ. कृष्ण मोहन पाण्डेय जी का दूरभाष आ गया। उन्होंने पूछा— आप चेतराम जी बोल रहें हैं? मैंने नमस्कार किया और कहा— ''हाँ! मैं चेतराम बोल रहा हूँ।'' आज ऊना के विवेकानन्द समारोह कार्यक्रम स्थल पर ही परम आदरणीय श्री विनोद लखनपाल जी का हृदय गति रुक जाने से देहान्त हो गया। मैं चुप, फोन भी चुप। थोड़ी देर में डॉ. एस. पी. बंसल जी ने बात की और रात को एक और सन्देश दूरभाष द्वारा दूसरे दिन के दाह संस्कार के बारे में आया। यह मेरे लिए बज्राघात की तरह था। दूसरे दिन मैं अन्तेष्टि संस्कार में गया।

स्मृति पटल पर प्रारम्भिक परिचय से लेकर अब तक की सारी घटनाएं एक-एक करके ध्यान आ रही थी। हम कैसे एक दूसरे के निकट आए और कैसे एक दूसरे के हो गए।

जब मैं नेरी शोध संस्थान में २००५ में आया तो वहां एक विद्वानों की सूची थी। उस सूची में जब में ऊना के विद्वानों के नाम पढ़ता था तो श्री विनोद लखनपाल जी का नाम लिखा हुआ था। मेरी पूर्व में उनसे कोई भेंट नहीं हुई थी और न ही उन्हें देखा था। श्रद्धेय ठाकुर राम सिंह जी के साथ उनका जुड़ाव पूर्व से ही था। शोध संस्थान में जब भी परिसंवाद का आयोजन होता तो उसमें उनका आना रहता था। पर मेरी व्यस्तता संस्थान में अनेक कार्य में होने के कारण उन से व्यक्तिगत तौर से मिलना नहीं हो पाया था। उनका ऊर्जस्वी चेहरा मेरे ध्यान में आ गया था।

श्रद्धेय ठाकुर जी के देहवसान के उपरान्त स्वाभाविक रूप से मुझे ही इन सब विद्वानों से सम्पर्क करना था। वर्ष १२-०२-२०१२ में हिमोत्कर्ष परिषद द्वारा स्वर्गीय ठाकुर जी का मरणोपरान्त इतिहास के क्षेत्र में किए गए कार्य के लिए सम्मानित किया गया। उस सम्मान को लेने संस्थान की ओर से मैं गया था। मंच संचालन श्री लखनपाल जी कर रहे थे।

उसके बाद जो हमारे सम्बन्ध स्थापित हुए तो वे प्रगाढ़ मित्रता में बदल गए। वे मुझे प्यार से पण्डित जी कहते थे। ऊना जिले का इतिहास उनकी पुस्तक प्रकाशित हो गई थी। स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास १८५७ से १९४७ तक उससे पूर्व प्रकाशित हो चुकी थी। संस्थान के लिए दो प्रतियां उन्होंने प्रकाशित होने के तुरन्त बाद दे दी थी।

नेरी से दिल्ली अथवा देश के अन्य स्थानों पर जाने का मेरा मार्ग प्रायः ऊना से था। जाते-आते ऊना में प्रायः रुक जाया करता था। ऊना रुका तो विनोद लखनपाल जी के साथ बैठना

होता था। शुरू-शुरू में जब मैं उनके घर पर गया तो किसी न किसी को साथ ले जाता था परन्तु बाद में तो अकेला ही जाता था। जब हम एक बार बैठ जाते तो ३-४ घण्टे तो हमारे लिए बहुत ही सामान्य बात थी। उनके निजी पुस्तकालय में ही हम प्रायः बैठा करते थे। एक-एक कर वे मुझे किताबें दिखाते तथा अलग-अलग इतिहासकारों के बारे में चर्चा करते। एक बार उन्होंने एक पुस्तक निकाली और कहा— देखो पण्डित जी, यह भगत सिंह के बारे में गलत तिथि प्रकाशित हुई है। मैंने पूछा— यह किस प्रकाशन की है। वह जागृति प्रकाशन की पुस्तक थी। मैंने श्री कृष्णानन्द सागर जी को दिल्ली नोएडा फोन लगाया। हमने उन्हें वह पुस्तक तथा पृष्ठ संख्या बताई जो गलत तिथि लिखी गई थी। कृष्णानन्द सागर जी ने अपने पास पुस्तक को खोला और देखा तो वह तिथि गलत थी। लखनपाल जी हर उस बिन्दु को रेखांकित करके रखते थे जिसे उन्हें उद्धृत करना होता था अथवा जिस पर उन्हें संशय होता था।

तीन वर्ष से निरन्तर शोध संस्थान से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक पत्रिका इतिहास दिवाकर के लिए वे लेख भेजते थे। उनका लेख कैसा होता था— उस बारे में पत्रिका के सम्पादक एवं शोध संस्थान वैचारिक पक्ष के निदेशक डॉ. विद्याचन्द जी का कहना है कि हम उससे एक भी शब्द नहीं काट सकते। ऐसी सुदृढ़ लेखनी है लखनपाल जी की।

विनोद लखनपाल जी स्वनाम धन्य व्यक्तित्त्व थे। चुटकुले, पंजाबी कहावतें, शायरी उनके पास सदा सामने वाले को खिलखिलाने के लिए होती थी। कई बार हम हिमोत्कर्ष कार्यालय में बैठते और वहीं पर चाय की चुस्कियों के साथ इतिहास पर कार्य की चर्चा चलती रहती थी।

हमारी अन्तिम भेंट नवम्बर मास में हुई। मैं पटियाला बैठक में गया हुआ था। वहां से बद्दी नालागढ़ होते हुए ऊना आया। संघ कार्यालय ऊना में सामान रखने पर मैंने उन्हें फोन किया। उन्होंने कहा— मैं मिन्टू जी के घर पर हूँ। आ जाओ। कोई दस मिनट में मैं उनके पास पहुँच गया। वे बाहर ही खड़े थे। मिन्टू जी और उनकी आपस में बात हो रही थी। हमारी राम-राम हुई। थोड़ी देर हम वहीं पर बैठे और मिन्टू जी अपने कार्य में व्यस्त थे। हम वहां से जिला जन सम्पर्क कार्यालय की ओर चलते गए। चलने पर हमारी बातचीत होती गई। उन्होंने कहा— पण्डित जी, मैंने अब दूसरे कार्य छोड़ दिए हैं। अब मेरा मन पूरा इतिहास के क्षेत्र में काम करने की ओर है। अब कोई ऐसा काम करने को मन नहीं होता जिसमें अपने देश की संस्कृति व इतिहास की चर्चा न हो। वे कहा करते थे। मुझे विरासत में बहुत कुछ मिला है। मेरे पूज्य पिता जी स्वर्गीय श्री बलदेव मित्र 'बिजली' देश की आज़ादी के लिए लगभग १७ वर्ष बार-बार जेल जाते रहे। एक देशभक्त कांग्रेस परिवार का मेरे जीवन में देश भक्ति का एक श्रेष्ठ संस्कार रचा-पसा है, तथा संघ के संस्कारों का भी ससुराल की ओर से प्राप्त राष्ट्र समर्पण है। दोनों ही घरों में सदैव देश भक्ति का वातावरण रहा करता था।

शोध संस्थान से स्वामी विवेकानन्द सार्ध शती वर्ष के उपलक्ष्य में 'स्वामी विवेकानन्द साहित्य के कथा प्रंसग' पुस्तक प्रकाशित हुई। उसके विमोचन का कार्यक्रम हमीरपुर डी.ए.वी. स्कूल में ३० सितम्बर २०१३ को रखा गया था। कार्यक्रम के साथ ही प्रदेश की समारोह समिति की बैठक थी। अच्छा संयोग था समारोह समिति के अध्यक्ष लेफ्टिंनेट जरनल ठाकुर भूपेन्द्र सिंह जी भी

उस कार्यक्रम में रहने वाले थे। उन्हीं के कर कमलों द्वारा पुस्तक का विमोचन करना तय हुआ। विचार हुआ कि पुस्तक की समीक्षा कौन करे? मुझे लगा कि इस पुस्तक की समीक्षा श्री लखनपाल जी करेंगे। मैंने एक फोन नेरी से लखनपाल जी के लिए लगाया। पुस्तक के बारे में बताया तथा निवेदन किया कि आप को इस पुस्तक की समीक्षा करनी है। उनका कहना था– पण्डित जी, पुस्तक की समीक्षा तो करनी है पर पुस्तक तो मेरे हाथ में आई ही नहीं। मैंने कहा कि कल शाम आप के पास पुस्तक मिल जाएगी। पुस्तक उन्हें मिली, उन्होंने पुस्तक को पढ़ा और मुझे बधाई दी और कहा कि इस पुस्तक की समीक्षा मैं ही करूंगा।

लखनपाल जी यातायात व दूसरी आवश्यकताओं के लिए किसी पर निर्भर नहीं थे। कहां कैसे आना जाना है, यह उनकी अपनी व्यवस्था रहती थी। जब भी उन्होंने नेरी आना तो पहले नादौन के रास्ते डॉ. ब्रह्मदत्त जी और डॉ. रतन चन्द शास्त्री जी के पास से होते हुए आते थे। उस जोड़ी को नेरी लाने का दायित्व वे स्वत: ही अपने आप ले लेते थे।

पुस्तक समीक्षा के लिए उन्हें सात मिनट का समय दिया गया था। उन्होंने ठीक समय पर अपनी समीक्षा निष्पक्ष भाव से की और मुझे बधाई दी। उन्हें उसी दिन वापिस ऊना जाना था। वे नेरी नहीं रुक सके। नेरी शोध संस्थान में रहने की इच्छा व्यक्त करते हुए उन्होंने फिर आने को कहा और कहा कि शोध संस्थान के लिए हम मिल के अच्छा काम करेंगे।

विनोद लखनपाल उसके बाद नेरी नहीं आ पाए। यहां तो समाचार आया, उनके स्वर्गारोहण का। वे हमें अकस्मात् छोड़ गए। हमारे पास रह गई है, उनकी स्मृतियां जो सदा हमारे साथ रहेंगी और हमें लक्ष्य की ओर आगे बढ़ाती रहेंगी।

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान
नेरी, हमीरपुर – १७७००१ (हि०प्र०)

भारतीय चिन्तन के आयाम पर संगोष्ठी

रवि ठाकुर

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान, नेरी के यशस्वी संस्थापक श्रद्धेय ठाकुर राम सिंह जी का जन्म दिवस सौर मास की परम्परा के अनुसार फाल्गुन प्रविष्टे ४ के दिन शोध संस्थान,नेरी में प्रतिवर्ष मनाया जाता है। इसी आधार पर इस वर्ष फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदा, शनिवार, तदनुसार १५ फरवरी २०१४ को यह पावन दिवस मनाया गया। प्रात: काल ९ बजे से १०.३० बजे तक हवन यज्ञ अनुष्ठान हुआ और इसके बाद ११.०० बजे भारतीय चिन्तन के आयाम पर संगोष्ठी का आयोजन हुआ। संगोष्ठी में मुख्य अतिथि महंत सूर्यनाथ थे और डॉ० वेद प्रकाश अग्नि ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की।

मुख्यातिथि एवं अध्यक्ष महोदय ने दीप प्रज्जवलन के साथ कार्यक्रम का शुभारम्भ किया। त्रिशा कालेज की छात्राओं ने सरस्वती वंदना प्रस्तुत की और इतिहास पुरुष का स्वरूप वाचन डॉ० कर्म सिंह ने किया। संस्थान के केन्द्रीय समन्वयक चेतराम ने शोध संस्थान में चल रही गतिविधियों पर प्रकाश डालते हुए ठाकुर राम सिंह जन्म शताब्दी वर्ष में किए जाने वाले कार्यों की जानकारी प्रदान की। डॉ० रमेश शर्मा जी ने श्रद्धेय ठाकुर जी के जीवन पर प्रकाश डाला तथा ठाकुर जी के इतिहास विषय पर किए कार्यों का स्मरण किया।

शोध संस्थान के लेखक प्रमुख डॉ० ओम प्रकाश शर्मा ने ***भारतीय चिन्तन के आयाम*** पर अपना विषय प्रस्तुत करते हुए भारत के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक चिन्तन के महत्त्वपूर्ण पहलुओं को इंगित किया। उन्होंने कहा कि पाश्चात्य विचार कि वानर आदि प्राणियों से विकसित हो कर मनुष्य बने, बड़ा कपोलकल्पित विचार है। वास्तव में सृष्टि रचना के क्रम में मनुष्य, प्रजापति की सन्तान हैं। यह सिद्धान्त केवल भारत के लिए नहीं, पूरे विश्व के लिए है।

मुख्य अतिथि महंत सूर्यनाथ ने अपने सम्बोधन में इतिहास के उस पहलू की ओर ध्यान दिलाया जिसमें यह बात आती है कि आर्य बाहर से आए। इस विषय पर उनका कहना था कि हम इतिहास में केवल विदेशियों के भ्रम जाल में ही उलझकर रह जाते हैं। उन्होंने कहा कि आज हम जिस क्षेत्र में रहते हैं वह जम्बूद्वीप है। जम्बूद्वीप से बड़ा आर्यवर्त रहा है। आर्यवर्त में मध्य एशिया का वह सारा क्षेत्र आता था जिसमें आज अनेक छोटे छोटे देश बन गए हैं। उनका कहना है कि आर्यों के आने और जाने का कोई प्रश्न ही नहीं है। हमें तो अपनी उन भौगोलिक सीमाओं का अध्ययन करना है जहां तक भारत फैला हुआ था। विदेशियों के भ्रम जाल में आने की आवश्यकता नहीं है।

अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में डॉ० वेद अग्नि जी ने कहा कि भारतीय जीवन मूल्यों को हमें अपने लोक जीवन के अन्दर ढूंढने के प्रयास करने चाहिए। उसके अन्दर समाज को जोड़ने वाले तत्त्व हैं। उन तत्त्वों को समझना और उनका साक्षात्कार करना हमारे लिए नितांत आवश्यक है। वही हमारी जड़ों को मजबूत करेंगे।

शोध संस्थान के अध्यक्ष श्री विजय मोहन कुमार पुरी जी ने कहा कि शोध संस्थान में इस

प्रकार की संगष्ठियों एवं परिसंवादों को बढ़ावा दिया जाएगा, क्योंकि यही संस्थान का ध्येय पथ है।

इससे पूर्व कलियुगाब्द ५११५, विक्रमी सम्वत्, २०७०, माघ पूर्णिमा, फाल्गुन प्रविष्टे ३, १४ फरवरी २०१४ को सांय ७ बजे निदेशक मण्डल एवं कार्य विभाग प्रमुखों की बैठक में संस्थान के कार्यों में अधिक सक्रियता लाने पर विचार विमर्श हुआ और कार्य विभाग प्रमुखों का निम्नलिखित रूप में सुनिश्चयन किया गया—

१. डॉ० ओम प्रकाश शर्मा — लेखक प्रमुख
२. श्री भूमि दत्त शर्मा — पुस्कालय प्रमुख
३. श्री प्यार चन्द परमार — पत्रिका व्यवस्था प्रमुख
४. श्री अश्वनी शर्मा — संग्रहालय प्रमुख
५. श्री ओम प्रकाश शुक्ला — अभिलेखागार प्रमुख

निदेशक मण्डल के महासचिव श्री प्रेम सिंह भरमौरिया के श्री चेत राम और श्री राजेन्द्र शर्मा को निदेशक मण्डल में सम्मिलित करने के प्रस्ताव को ॐ की ध्वनि के साथ सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया।

समाचार पत्र के स्वामित्व एवं अन्य विषयों से सम्बंधित विवरण

फार्म —४ (नियम ८ देखिए)

१. प्रकाशन स्थल	:	ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान हमीरपुर नेरी
२. प्रकाशन तिथि	:	अप्रैल, जुलाई, अक्तूबर, जनवरी माह का प्रथम सप्ताह
३. मुद्रक का नाम	:	चेतराम
क्या भारतीय नागरिक है?	:	हां
पता	:	ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान हमीरपुर नेरी गांव नेरी, डाकघर खगल, जिला हमीरपुर—१७७००१ हिमाचल प्रदेश।
४. प्रकाशक का नाम	:	चेतराम
क्या भारतीय नागरिक है?	:	हां
पता	:	ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान हमीरपुर नेरी गांव नेरी, डाकघर खगल, जिला हमीरपुर—१७७००१ हिमाचल प्रदेश।
५. सम्पादक का नाम	:	डॉ० विद्या चन्द ठाकुर
क्या भारतीय नागरिक है?	:	हां
पता	:	ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान हमीरपुर नेरी गांव नेरी, डाकघर खगल, जिला हमीरपुर—१७७००१ हिमाचल प्रदेश।
६. उन व्यक्तियों के नाम व पत्ते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के सांझेदार या हिस्सेदार हों।	:	ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान हमीरपुर नेरी गांव नेरी, डाकघर खगल, जिला हमीरपुर—१७७००१ हिमाचल प्रदेश।

मैं चेतराम प्रकाशक एवं मुद्रक इतिहास दिवाकर एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकृत जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गए विवरण सत्य है।

हस्ता/—
चेतराम
प्रकाशक
दिनांक ३१ मार्च, २०१४